अनुक्रम.......

आमुख

संसार में कई प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। उनमें कुछ सम्बंध लौकिक होते हैं तो कुछ पारलौकिक, कुछ भौतिक होते हैं तो कुछ आध्यात्मिक। उनमें सबसे विलक्षण, पवित्र और सर्वोपरि सम्बंध है गुरु-शिष्य सम्बन्ध, क्योंकि अन्य सभी सम्बन्ध मनुष्य को सदियों से दुःख देनेवाले संसार-बंधन से मुक्त करने में अक्षम हैं। एकमात्र गुरु-शिष्य सम्बंध ही उसे संसार-बंधन से मुक्त कर सकता है।

स्वामी शिवानंद सरस्वती अपनी पुस्तक 'गुरुभक्तियोग में कहते हैं- "गुरु-शिष्य का सम्बंध पवित्र एवं जीवनपर्यन्त का है।" अर्थात् जब तक शिष्य मुक्त नहीं हो जाता, नये-नये शरीर धारण कर जीवन जीता रहता है, तब तक गुरु उसका हाथ थामकर उसे मुक्तिमार्ग पर आगे बढ़ाते रहते हैं, बशर्ते शिष्य उनका हाथ थामे रहे, उन्हें अपना जीवन गढ़ने में सहयोग दे।

ऐसे सदगुरुओं एवं सतशिष्यों के मधुर जीवन-प्रसंगों का रसास्वादन कर हम गुरुभक्ति के अमृत से अपने हृदय को परितृप्त एवं जीवन को रसमय बना सकें, यही शुभ भावना मन में सँजोये इस सचित्र रंगीन पुस्तक का संकलन किया गया है। इसमें दिये गये घटित प्रसंग इस पवित्रतम सम्बंध के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। आशा है आप इसका लाभ उठाकर

अपने जीवन को मधुमय, आनंदमय, सुख-शांतिमय बनायेंगे और दूसरों को भी इसका लाभ उठाने हेतु प्रेरित करने का दैवी कार्य करेंगे।

विनीत,
श्री योग वेदांत सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद।

अनुक्रम

भगवान श्री कृष्ण और सुदामा का गुरु-प्रेम

कंस वध के बाद भगवान श्रीकृष्ण तथा बलराम गुरुकुल में निवास करने की इच्छा से काश्यपगोत्री सान्दीपनि मुनि के पास गये, जो चेष्टाओं को सर्वथा नियंत्रित रखे हुए थे। गुरुजी तो उन्हें अत्यंत स्नेह करते ही थे, भगवान श्रीकृष्ण और बलराम भी गुरुदेव की उत्तम सेवा कैसे

करनी चाहिए, इसका आदर्श लोगों के सामने रखते हुए बड़ी भक्तिपूर्वक, इष्टदेव के समान उनकी सेवा करने लगे।

गुरुवर सान्दीपनि उनकी शुद्धभाव से युक्त सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों भाइयों को छहों अंगों र उपनिषदों सहित सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा दी। इनके अतिरिक्त मंत्र और देवताओं के ज्ञान के साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि वेदों का तात्पर्य बतलाने वाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदि की भी शिक्षा दी। साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध (दुरंगी नीति) और आश्रय – इन छः भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन कराया। भगवान श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओं के प्रवर्तक (आरम्भ करने वाले) हैं। उस समय वे केवल श्रेष्ठ मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरुजी द्वारा सभी विद्याएँ केवल एक बार सिखाने मात्र से ही सीख लीं। केवल चौंसठ दिन-रात में ही संयमशिरोमणि दोनों भाइयों ने चौंसठों कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

'श्रीमदभागवत' के दसवें स्कन्ध के 80 वें अध्याय में अपने सहपाठी सुदामा से गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-"ब्राह्मणशिरोमणे ! क्या आपको उस समय की बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुल में निवास करते थे। सचमुच, गुरुकुल में ही द्विजातियों को अपने ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा अज्ञानान्धकार से पार हो जाते हैं।

मित्र ! इस संसार में शरीर का कारण जन्मदाता पिता, प्रथम गुरु है। इसके बाद उपनयन संस्कार करके सत्कर्मों की शिक्षा देने वाला दूसरा गुरु है, वह मेरे ही समान पूज्य है। तदनन्तर ज्ञानोपदेश देकर परमात्मा को प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है। वर्णाश्रमियों में जो लोग अपने गुरुदेव के उपदेशानुसार अनायास ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थ के सच्चे जानकार हैं।

प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदय में अन्तर्यामीरूप से विराजमान हूँ। मैं गृहस्थ के धर्म पंचमहायज्ञ आदि से, ब्रह्मचारी के धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदि से, वानप्रस्थी के धर्म तपस्या से और सब ओर से उपरत हो जाना – इस संन्यासी के धर्म से भी उतना संतुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेव की सेवा-शुश्रूषा से सन्तुष्ट होता हूँ।

ब्रह्मन् ! जिस समय हम लोग गुरुकुल में निवास कर रहे थे उस समय की वह बात आपको याद है क्या, जब एक दिन हम दोनों के हमारी गुरुमाता ने ईंधन (लकड़ियाँ) लाने के लिए जंगल में भेजा था। उस समय हम लोग एक घोर जंगल मे गये थे और बिना ऋतु के ही बड़ा भयंकर आँधी-पानी आ गया था। आकाश में बिजली कड़कने लगी थी। जब सूर्यास्त हो गया, तब चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा फैल गया था। धरती पर इस प्रकार पानी-ही-पानी हो गया कि कहाँ गड्डा है, कहाँ किनारा, इसका पता ही नहीं चलता था ! वह वर्षा क्या थी, एक छोटा-मोटा प्रलय ही था। आँधी के झटकों और वर्षा की बौछारों से हम लोगों को बड़ी पीड़ा हुई, दिशा का

ज्ञान न रहा। हम लोग अत्यन्त आतुर हो गये और एक दूसरे का हाथ पकड़कर जंगल में इधर उधर भटकते रहे।

सूर्योदय होते ही हमारे गुरुदेव सान्दीपनि मुनि हम लोगों को ढूँढते हुए जंगल में पहुँचे और उन्होंने देखा कि हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं। वे कहने लगेः "आश्चर्य है, आश्चर्य है ! पुत्रो ! तुम लोगों ने हमारे लिए अत्यन्त कष्ट उठाया। सभी प्राणियों को अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है, परन्तु तुम दोनों उसकी भी परवाह किए बिना हमारी सेवा में ही संलग्न रहे। गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए सतशिष्यों का इतना ही कर्तव्य है कि वे विशुद्ध-भाव से अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दें। द्विज-शिरोमणियो ! मैं तुम दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सारे मनोरथ, सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हों और तुम लोगों ने मुझसे जो वेदाध्ययन किया है, वह तुम्हें सर्वदा कण्ठस्थ रहे तथा इस लोक और पर लोक में कहीं भी निष्फल न हो।'

प्रिय मित्र ! जिस समय हम लोग गुरुकुल में निवास कर रहे थे, हमारे जीवन में ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई थीं। इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेव की कृपा से ही मनुष्य शांति का अधिकारी होता है और पूर्णता को प्राप्त करता है।"

भगवान शिवजी ने भी कहा हैः

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद् भवः।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता।।

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है।'

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

भगवान श्रीराम की गुरुसेवा

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम अपने शिक्षागुरु विश्वामित्रजी के पास बहुत संयम, विनय और विवेक से रहते थे। गुरु की सेवा में वे सदैव तत्पर रहते थे। उनकी सेवा के विषय में भक्त कवि तुलसीदासजी ने लिखा हैः

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई।।
जिन्ह के चरन सरोरूह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी।।
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकांडः 225.2.3)

गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकांडः 226)

सीता स्वयंवर में जब सब राजा एक-एक करके धनुष उठाने का प्रयत्न कर रहे थे, तब श्रीराम संयम से बैठे ही रहे। जब गुरु विश्वामित्र की आज्ञा हुई तभी वे खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके धनुष उठाया।

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकांडः 253.4)

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकांडः 260.3)

श्री सदगुरुदेव के आदर और सत्कार में श्रीराम कितने विवेकी और सचेत थे इसका उदाहरण तब देखने को मिलता है, जब उनको राज्योचित शिक्षण देने के लिए उनके गुरु वसिष्ठजी महाराज महल में आते हैं। सदगुरु के आगमन का समाचार मिलते ही श्रीराम सीता जी सहित दरवाजे पर आकर गुरुदेव का सम्मान करते हैं-

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा।।
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकांडः 8.1.2)

इसके उपरांत श्रीरामजी भक्तिभावपूर्वक कहते हैं- "नाथ ! आप भले पधारे। आपके आगमन से घर पवित्र हुआ। परंतु होना तो यह चाहिए था कि आप समाचार भेज देते तो यह दास स्वयं सेवा में उपस्थित हो जाता।"

इस प्रकार ऐसी विनम्र भक्ति से श्रीराम अपने गुरुदेव को संतुष्ट रखते थे।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

छत्रपति शिवाजी महाराज की अनूठी गुरु-सेवा

"भाई ! तुझे नहीं लगता कि गुरुदेव हम सबसे ज्यादा शिवाजी को चाहते हैं? शिवाजी के कारण हमारे प्रति उनका यह पक्षपात मेरे अंतर में शूल की नाई चुभ रहा है।"

समर्थ रामदास स्वामी का एक शिष्य दूसरे शिष्य से इस तरह की गुफ्तगू कर रहा था। "हाँ, बंधु ! तेरी बात शत-प्रतिशत सही है। शिवाजी राजा है, छत्रपति हैं इसीलिए समर्थ हम सबसे ज्यादा उन पर प्रेम बरसाते हैं। इसमें हमको कुछ गलत नहीं लगना चाहिए।"

शिष्य तो इस तरह की बातें करके अपने-अपने काम में लग गये, लेकिन इन दोनों का यह वार्तालाप अनायास ही समर्थ रामदास स्वामी के कानों में पड़ गया था। समर्थ ने सोचा कि 'उपदेश से काम नहीं चलेगा, इनको प्रयोगसहित समझाना पड़ेगा।'

एक दिन समर्थ ने लीला की। वे शिष्यों को साथ लेकर जंगल में घूमने गये। चलते-चलते समर्थ पूर्वनियोजन के अनुसार राह भूलकर घोर जंगल में इधर-उधर भटकने लगे। सब जंगल से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ रहे थे, तभी अचानक समर्थ को उदर-शूल उठा। पीड़ा असह्य होने से उन्होंने शिष्यों को आस-पास में कोई आश्रय-स्थान ढूँढने को कहा। ढूँढने पर थोड़ी दूरी पर एक गुफा मिला गयी। शिष्यों के कन्धों के सहारे चलते हुए किसी तरह समर्थ उस गुफा तक पहुँच गये। गुफा में प्रवेश करते ही वे जमीन पर लेट गये एवं पीड़ा से कराहने लगे। शिष्य उनकी पीड़ा मिटाने का उपाय खोजने की उलझन में खोयी-सी स्थिति में उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। सभी ने मिलकर गुरुदेव से इस पीड़ा का इलाज पूछा।

समर्थ ने कहाः "इस रोग की एक ही औषधि है – बाघनी का दूध ! लेकिन उसे लाना माने मौत को निमंत्रण देना !" अब उदर शूल मिटाने के लिए बाघनी का दूध कहाँ से लायें और लाये कौन? सब एक दूसरे का मुँह ताकते हुए सिर पकड़कर बैठ गये।

उसी समय शिवाजी को अपने गुरुदेव के दर्शन करने की इच्छा हुई। आश्रम पहुँचने पर उन्हें पता चला कि गुरुदेव तो शिष्यों को साथ लेकर बहुत देर से जंगल में गये हैं। गुरुदर्शन के लिए शिवाजी का तड़प तीव्र हो उठी। अंततः शिवाजी ने समर्थ के दर्शन होने तक बिना अन्न-जल के रहने का निश्चय किया और उनकी तलाश में सैनिकों की एक टोली के साथ जंगल की ओर चल पड़े।

खोजते-खोजते शाम हो गयी किंतु उन्हें समर्थ के दर्शन नहीं हुए। देखते-ही-देखते अँधेरा छा गया। जंगली जानवरों की डरावनी आवाजें सुनायी पड़ने लगीं, फिर भी शिवाजी 'गुरुदेव! गुरुदेव!!' ऐसा पुकारते हुए आगे बढ़ते गये। अब तो सैनिक भी मन-ही-मन खिन्न हो गये परंतु शिवाजी की गुरु-मिलन की व्याकुलता के आगे वे कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं कर सके। आखिर सैनिक भी पीछे रह गये परंतु शिवा को इस बात की चिंता नहीं थी, उन्हें तो गुरुदर्शन की तड़प थी। घोड़े पर सवार शिवा में हाथ में मशाल लिये आगे बढ़ते ही रहे।

मध्यरात्रि हो गयी। कृष्णपक्ष की अँधेरी रात्रि में जंगली जानवरों के चलने फिरने की आवाज सुनायी पड़ने लगी। इतने में शिवाजी ने बाघ की दहाड़ सुनी। वे रुक गये। कुछ समय तक जंगल में दहाड़ की प्रतिध्वनि गूँजती रही और फिर सन्नाटा छा गया। इतने में एक करुण स्वर वन में गूँजाः 'अरे भगवान ! हे रामरायाऽऽऽ.... मुझे इस पीड़ा से बचाओ।'

'यह क्या ! यह तो गुरु समर्थ की वाणी है ! शिवाजी आवाज तो पहचान गये, परंतु सोच में पड़ गये कि 'समर्थ जैसे महापुरुष ऐसा करुण क्रंदन कैसे कर सकते हैं? वे तो शरीर के सम्बन्ध से पार पहुँचे हुए समर्थ योगी हैं।'

शिवाजी को संशय ने घेर लिया। इतने में फिर उसी ध्वनि का पुनरावर्तन हुआ। शिवाजी ने ध्यानपूर्वक सुना तो पता चला कि वे जिस पहाड़ी के नीचे हैं, उसी के शिखर से यह करुण ध्वनि आ रही है। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए कहीं से भी कोई रास्ता न दिखा। शिवाजी घोड़े से

उतरे और अपनी तलवार से कँटीली झाड़ियों को काटकर रास्ता बनाते हुए आखिर गुफा तक पहुँच ही गये। शिवाजी को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ, जब उन्होंने समर्थ की पीड़ा से कराहते और लोट-पोट होते देखा। शिवा की आँखें आँसुओं से छलक उठीं। वे मशाल को एक तरफ रखकर समर्थ के चरणों में गिर पड़े। समर्थ के शरीर को सहलाते हुए शिवाजी ने पूछाः "गुरुदेव ! आपको यह कैसी पीड़ा हो रही है? आप इस घने जंगल में कैसे? गुरुदेव ! कृपा करके बताइये।"

समर्थ कराहते हुए बोलेः "शिवा ! तू आ गया? मेरे पेट में जैसे शूल चुभ रहे हों ऐसी असह्य वेदना हो रही है रे..."

"गुरुदेव ! आपको तो धन्वंतरि महाराज भी हाजरा-हजूर हैं। अतः आप इस उदर शूल की औषधि तो जानते ही होंगे। मुझे औषधि का नाम कहिये। शिवा आकाश-पाताल एक करके भी वह औषधि ले आयेगा।"

"शिवा ! यह तो असाध्य रोग है। इसकी कोई औषधि नहीं है। हाँ, एक औषधि से राहत जरूर मिल सकती है लेकिन जाने दे। इस बीमारी का एक ही इलाज है और वह भी अति दुर्लभ है। मैं उस दवा के लिए ही यहाँ आया था, लेकिन अब तो चला भी नहीं जाता.... दर्द बढ़ता ही जा रहा है..."

शिवा को अपने-आपसे ग्लानि होने लगी कि 'गुरुदेव लम्बे समय से ऐसी पीड़ा सहन कर रहे हैं और मैं राजमहल में बैठा था। धिक्कार है मुझे ! धिक्कार है !!' अब शिवा से रहा न गया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहाः "नहीं गुरुदेव ! शिवा आपकी यातना नहीं देख सकता। आपको स्वस्थ किये बिना मेरी अंतरात्मा शांति से नहीं बैठेगी। मन में जरा भी संकोच रखे बिना मुझे इस रोग की औषधि के बारे में बतायें। गुरुदेव ! मैं लेकर आता हूँ वह दवा।"

समर्थ ने कहाः "शिवा ! इस रोग की एक ही औषधि है – बाघनी का दूध ! लेकिन उसे लाना माने मौत का निमंत्रण देना है। शिवा ! हम तो ठहरे अरण्यवासी। आज यहाँ कल वहाँ होंगे, कुछ पता नहीं। परंतु तुम तो राजा हो। लाख गये तो चलेगा, परंतु लाखों का रक्षक जिन्दा रहना चाहिए।"

"गुरुदेव ! जिनकी कृपादृष्टि मात्र से हजारों शिवा तैयार हो सकते हैं, ऐसे समर्थ सदगुरु की सेवा में एक शिवा की कुर्बानी हो भी जाये तो कोई बात नहीं। मुगलों के साथ लड़ते-लड़ते मौत के साथ सदैव जूझता आया हूँ, गुरुसेवा करते-करते मौत आ जायेगी तो मृत्यु भी महोत्सव बन जायेगी। गुरुदेव आपने ही तो सिखाया है कि आत्मा कभी मरती नहीं और नश्वर देह को एक दिन जला ही देना है। ऐसी देह का मोह कैसा? गुरुदेव ! मैं अभी बाघनी का दूध लेकर आता हूँ।"

'क्या होगा? कैसे मिलेगा?' अथवा 'ला सकूँगा या नहीं?' – ऐसा सोचे बिना शिवाजी गुरु को प्रणाम करके पास में पड़ा हुआ कमंडलु लेकर चल पड़े। सतशिष्य की कसौटी करने के लिए

प्रकृति ने भी मानों, कमर कसी और आँधी-तुफान के साथ जोरदार बारिश शुरु हुई। बरसते पानी में शिवाजी दृढ़ विश्वास के साथ चल पड़े बाघनी को ढूँढने। लेकिन क्या यह इतना आसान था? मौत के पंजे में प्रवेश कर वहाँ से वापस आना कैसे संभव हो सकता है? परंतु शिवाजी को तो गुरुसेवा की धुन लगी थी। उन्हें इन सब बातों से क्या लेना-देना? प्रतिकूल संयोगों का सामना करते हुए नरवीर शिवाजी आगे बढ़ रहे थे। जंगल में बहुत दूर जाने पर शिवा को अँधेरे में चमकती हुई चार आँखें दिखीं। शिवा उनकी ओर आगे बढ़ने लगे। उनको अपना लक्ष्य दिख गया। वे समझ गये कि ये बाघनी के बच्चे हैं, अतः बाघनी भी कहीं पास में ही होगी। **शिवाजी प्रसन्न थे। मौत के पास जाने में प्रसन्न ! एक सतशिष्य के लिए उसके सदगुरु की प्रसन्नता से बड़ी चीज संसार में और क्या हो सकती है? इसलिए शिवाजी प्रसन्न थे।**

शिवाजी के कदमों की आवाज सुनकर बाघनी के बच्चों ने समझा कि उनकी माँ है, परंतु शिवाजी को अपने बच्चों के पास चुपके-चुपके जाते देखकर पास में बैठी बाघनी क्रोधित हो उठी। उसने शिवाजी पर छलाँग लगायी परंतु कुशल योद्धा शिवाजी ने अपने को बाघनी के पंजे से बचा लिया। फिर भी उनकी गर्दन पर बाघनी के दाँत अपना निशान छोड़ चुके थे। परिस्थितियाँ विपरीत थीं। बाघनी क्रोध से जल रही थी। उसका रोम-रोम शिवा के रक्त का प्यासा बना हुआ था, परंतु शिवा का निश्चय अटल था। वे अब भी हार मानने को तैयार नहीं थे, क्योंकि समर्थ सदगुरु के सतशिष्य जो ठहरे !

शिवाजी बाघनी से प्रार्थना करने लगे कि **'हे माता ! मैं तेरे बच्चों का अथवा तेरा कुछ बिगाड़ने नहीं आया हूँ। मेरे गुरुदेव को रहे उदर-शूल में तेरा दूध ही एकमात्र इलाज है। मेरे लिए गुरुसेवा से बढ़कर इस संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं। हे माता ! मुझे मेरे सदगुरु की सेवा करने दे। तेरा दूध दुहने दे।'** पशु भी प्रेम की भाषा समझते हैं। शिवाजी की प्रार्थना से एक महान आश्चर्य घटित हुआ – शिवाजी के रक्त की प्यासी बाघनी उनके आगे गौमाता बन गयी ! शिवाजी ने बाघनी के शरीर पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरा और अवसर पाकर वे उसका दूध निकालने लगे। शिवाजी की प्रेमपूर्वक प्रार्थना का कितना प्रभाव ! दूध लेकर शिवा गुफा में आये।

समर्थ ने कहाः "आखिर तू बाघनी का दूध भी ले आया, शिवा ! जिसका शिष्य गुरुसेवा में अपने जीवन की बाजी लगा दे, प्राणों को हथेली पर रखकर मौत से जूझे, उसके गुरु को उदर-शूल कैसे रह सकता है? मेरा उदर-शूल तो जब तू बाघनी का दूध लेने गया, तभी अपने-आप शांत हो गया था। शिवा तू धन्य है ! धन्य है तेरी गुरुभक्ति ! तेरे जैसा एकनिष्ठ शिष्य पाकर मैं गौरव का अनुभव करता हूँ।" ऐसा कहकर समर्थ ने शिवाजी के प्रति ईर्ष्या रखनेवाले उन दो शिष्यों के सामने अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। 'गुरुदेव शिवाजी को अधिक क्यों चाहते हैं?' – इसका रहस्य उनको समझ में आ गया। उनको इस बात की प्रतीति कराने के लिए ही गुरुदेव ने उदर-शूल की लीला की थी, इसका उन्हें ज्ञान हो गया।

अपने सदगुरु की प्रसन्नता के लिए अपने प्राणों तक बलिदान करने का सामर्थ्य रखनेवाले शिवाजी धन्य हैं ! धन्य हैं ऐसे सतशिष्य ! जो सदगुरु के हृदय में अपना स्थान बनाकर अमर पद प्राप्त कर लेते हैं.... धन्य है भारतमाता ! जहाँ ऐसे सदगुरु और सतशिष्य पाये जाते हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

बाबा फरीद की गुरुभक्ति

पाकिस्तान में बाबा फरीद नाम के एक फकीर हो गये। वे अनन्य गुरुभक्त थे। गुरुजी की सेवा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था। एक बार उनके गुरु ख्वाजा बहाउद्दीन ने उनको किसी खास काम के लिए मुलतान भेजा। उन दिनों वहाँ शम्सतबरेज के शिष्यों ने गुरु के नाम का दरवाजा बनाया था और घोषणा की थी कि आज इस दरवाजे से जो गुजरेगा वह जरूर स्वर्ग में जायेगा। हजारों फकीरों ने दरवाजे से गुजर रहे थे। नश्वर शरीर के त्याग के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा ऐसी सबको आशा थी। फरीद को भी उनके मित्र फकीरों ने दरवाजे से गुजरने के लिए खूब समझाया, परंतु फरीद तो उनको जैसे-तैसे समझा-पटाकर अपना काम पूरा करके, बिना दरवाजे से गुजरे ही अपने गुरुदेव के चरणों में पहुँच गये। सर्वान्तर्यामी गुरुदेव ने उनसे मुलतान के समाचार पूछे और कोई विशेष घटना हो तो बताने के लिए कहा। फरीद ने शाह शम्सतबरेज के दरवाजे का वर्णन करके सारी हकीकत सुना दी। गुरुदेव बोलेः "मैं भी वहीं होता तो उस पवित्र दरवाजे से गुजरता। तुम कितने भाग्यशाली हो फरीद कि तुमको उस पवित्र दरवाजे से गुजरने का सुअवसर प्राप्त हुआ !" सदगुरु की लीला बड़ी अजीबो गरीब होती है। शिष्य को पता भी नहीं चलता और वे उसकी कसौटी कर लेते हैं। फरीद तो सतशिष्य थे। उनको अपने गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति थी। गुरुदेव के शब्द सुनकर बोलेः "कृपानाथ ! मैं तो उस दरवाजे से नहीं गुजरा। मैं तो केवल आपके दरवाजे से ही गुजरूँगा। एक बार मैंने आपकी शरण ले ली है तो अब किसी और की शरण मुझे नहीं जाना है।"

यह सुनकर ख्वाजा बहाउद्दीन की आँखों में प्रेम उमड़ आया। शिष्य की दृढ श्रद्धा और अनन्य शरणागति देखकर उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। उनके हृदय की गहराई से आशीर्वाद के शब्द निकल पड़ेः "फरीद ! शम्सतबरेज का दरवाजा तो केवल एक ही दिन खुला था, परंतु तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से जो हर गुरुवार को गुजरेगा वह सीधा स्वर्ग में जायेगा।"

आज भी पश्चिमी पाकिस्तान के पाक पट्टन कस्बे में बने हुए बाबा फरीद के दरवाजे में से हर गुरुवार के गुजरकर हजारों यात्री अपने को धन्यभागी मानते हैं। यह है गुरुदेव के प्रति

अनन्य निष्ठा की महिमा ! धन्यवाद है बाबा फरीद जैसे सतशिष्यों को, जिन्होंने सदगुरु के हाथों में अपने जीवन की बागडोर हमेशा के लिए सौंप दी और निश्चिंत हो गये। आत्मसाक्षात्कार या तत्त्वबोध तब तक संभव नहीं, जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष साधक के अन्तःकरण का संचालन नहीं करते। आत्मवेत्ता महापुरुष जब हमारे अन्तःकरण का संचालन करते हैं, तभी अन्तःकरण परमात्म-तत्त्व में स्थित हो सकता है, नहीं तो किसी अवस्था में, किसी मान्यता में, किसी वृत्ति में, किसी आदत में साधक रुक जाता है। रोज आसन किये, प्राणायाम किये, शरीर स्वस्थ रहा, सुख-दुःख के प्रसंग में चोटें कम लगीं, घर में आसक्ति कम हुई, पर व्यक्तित्व बना रहेगा। उससे आगे जाना है तो महापुरुषों के आगे बिल्कुल 'मर जाना' पड़ेगा। ब्रह्मवेत्ता सदगुरु के हाथों में जब हमारे 'मैं' की लगाम आती है, तब आगे की यात्रा आती है।

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाहीं।
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मन माँही।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

रामू का गुरु-समर्पण

संत परम हितकारी होते हैं। वे जो कुछ कहें, उसका पालन करने के लिए डट जाना चाहिए। इसी में हमारा कल्याण निहित है। महापुरुष "हे रामजी ! त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन करके सुखी रह सके?" श्री गुरुगीता में भगवान शंकर कहते हैं-

गुरुणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत्। कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ।।

'गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी परंतु उसका उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए। रात और दिन गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए उनके सान्निध्य में दास बनकर रहना चाहिए।'

गुरुदेव की कही हुई बात चाहे झूठी दिखती हो फिर भी शिष्य को संदेह नहीं करना चाहिए, कूद पड़ना चाहिए उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए। सौराष्ट्र (गुज.) में रामू नाम के महान गुरुभक्त शिष्य हो गये। लालजी महाराज (सौराष्ट्र के एक संत) के नाम उनका पत्र आता रहता था। लालजी महाराज ने ही रामू के जीवन की यह घटना बतायी थी-

एक बार रामू के गुरु ने कहाः "रामू ! घोड़ागाड़ी ले आ। भगत के घर भोजन करने जाना है।"

रामू घोड़ागाड़ी ले आया। गुरु नाराज होकर बोलेः "अभी सुबह के सात बजे हैं, भोजन तो 11-12 बजे होगा। बेवकूफ कहीं का, 12 बजे भोजन करने जाना है और गाड़ी अभी ले आया? बेचारा ताँगेवाला तब तक बैठा रहेगा?"

रामू गया, ताँगेवाले को छुट्टी देकर आ गया। गुरु ने पूछाः "क्या किया?"

"ताँगा वापस कर दिया।" हाथ जोड़कर रामू बोला।

गुरुजीः "जब जाना ही था तो वापस क्यों किया? जा ले आ।"

रामू गया और ताँगेवाले को बुला लाया।

"गुरुजी ! ताँगा आ गया।"

गुरुजीः "अरे ! ताँगा ले आया? हमें जाना तो बारह बजे है न? पहले इतना समझाया अभी तक नहीं समझा? भगवान को क्या समझेगा? ताँगे की छोटी-सी बात को नहीं समझता, राम को क्या समझेगा?"

ताँगा वापस कर दिया गया। रामू आया तो गुरु गरज उठे।

"वापस कर दिया? फिर समय पर मिले-न-मिले, क्या पता? जा, ले आ।"

नौ बार ताँगा गया और वापस आया। रामू यह नहीं कहता कि गुरु महाराज ! आपने ही तो कहा था। वह सत्पात्र शिष्य जरा-भी चिढ़ता नहीं। गुरुजी तो चिढ़ने का व्यवस्थित संयोग खड़ा कर रहे थे। रामू को गुरुजी के सामने चिढ़ना तो आता ही नहीं था, कुछ भी हो, गुरुजी के आगे वह मुँह बिगाड़ता ही नहीं था। दसवीं बार ताँगा स्वीकृत हो गया। तब तक बारह बज गये थे। रामू और गुरुजी भक्त के घर गये। भोजन किया। भक्त था कुछ साधन सम्पन्न। विदाई के समय उसने गुरुजी के चरणों में वस्त्रादि रखे और साथ में, रूमाल में सौ-सौ के दस नोट भी रख दिये और हाथ जोड़कर विनम्रता से प्रार्थना कीः "गुरुजी ! कृपा करें, इतना स्वीकार कर लें। इनकार न करें।"

फिर वे ताँगे में बैठकर वापस आने लगे। रास्ते में गुरुजी ताँगवाले से बातचीत करने लगे। ताँगेवाले ने कहाः

"गुरुजी ! हजार रुपये में यह घोड़ागाडी बनी है, तीन सौ का घोड़ा लाया हूँ और सात सौ की गाड़ी। परंतु गुजारा नहीं होता। धन्धा चलता नहीं, बहुत ताँगेवाले हो गये हैं।"

"गुरुजीः "हजार रुपये में यह घोड़ागाड़ी बनी है तो हजार रुपये में बेचकर और कोई काम कर।"

ताँगेवालाः "गुरुजी ! अब इसका हजार रुपया कौन देगा? गाड़ी नयी थी तब कोई हजार दे भी देता, परंतु अब थोड़ी-बहुत चली है। हजार कहाँ मिलेंगे?"

गुरुजी ने उसे सौ-सौ के दस नोट पकड़ा दिये और बोलेः "जा बेटा ! और किसी अच्छे धन्धे में लग जा। रामू ! तू चला ताँगा।"

रामू यह नहीं कहता कि 'गुरुजी मुझे नहीं आता। मैंने ताँगा कभी नहीं चलाया'। गुरुजी कहते हैं तो बैठ गया कोचवान होकर।

रास्ते में एक विशाल वटवृक्ष आया। गुरुजी ने उसके पास ताँगा रुकवा दिया। उस समय पक्की सड़कें नहीं थीं, देहाती वातावरण था। गुरुजी सीधे आश्रम में जानेवाले नहीं थे। सरिता के किनारे टहलकर फिर शाम को जाना था। ताँगा रख दिया वटवृक्ष की छाया में। गुरुजी सो गये।

सोये थे तब छाया थी, समय बीता तो ताँगे पर धूप आ गयी। घोड़ा जोतने के डण्डे थोड़े तप गये थे। गुरुजी उठे, डण्डे को छूकर देखा तो बोलेः

"अरे, रामू ! इस बेचारी गाड़ी को बुखार आ गया है। गर्म हो गयी है। जा पानी ले आ।"

रामू ने पानी लाकर गाड़ी पर छाँट दिया। गुरुजी ने फिर गाड़ी की नाड़ी देखी और रामू से पूछाः

रामूः "हाँ।"

गुरुजीः "तो यह गाड़ी मर गयी.... ठण्डी हो गयी है बिल्कुल।"

रामूः "जी, गुरुजी !"

गुरुजीः "मरे हुए आदमी का क्या करते हैं?"

रामूः "जला दिया जाता है।"

गुरुजीः "तो इसको भी जला दो। इसकी अंतिम क्रिया कर दो।"

गाड़ी जला दी गयी। रामू घोड़ा ले आया।

"अब घोड़े का क्या करेंगे?" रामू ने पूछा।

गुरुजीः "घोड़े को बेच दे और उन पैसों से गाड़ी का बारहवाँ करके पैसे खत्म कर दे।"

घोड़ा बेचकर गाड़ी का क्रिया-कर्म करवाया, पिण्डदान दिया और बारह ब्राह्मणों को भोजन कराया। मृतक आदमी के लिए जो कुछ किया जाता है वह सब गाड़ी के लिए किया गया।

गुरुजी देखते हैं कि रामू के चेहरे पर अभी तक फरियाद का कोई चिह्न नहीं ! अपनी अक्ल का कोई प्रदर्शन नहीं ! रामू की अदभुत श्रद्धा-भक्ति देखकर बोलेः "अच्छा, अब पैदल जा और भगवान काशी विश्वनाथ के दर्शन पैदल करके आ।"

कहाँ सौराष्ट्र (गुज.) और कहाँ काशी विश्वनाथ (उ.प्र.) !

रामू गया पैदल। भगवान काशी विश्वनाथ के दर्शन पैदल करके लौट आया।

गुरुजी ने पूछाः "काशी विश्वनाथ के दर्शन किये?"

रामूः "हाँ गुरुजी।"

गुरुजीः "गंगाजी में पानी कितना था?"

रामूः "मेरे गुरुदेव की आज्ञा थीः 'काशी विश्वनाथ के दर्शन करके आ' तो दर्शन करके आ गया।"

गुरुजीः "अरे ! फिर गंगा-किनारे नहीं गया? और वहाँ मठ-मंदिर कितने थे?"

रामूः "मैंने तो एक ही मठ देखा है – मेरे गुरुदेव का।"

गुरुजी का हृदय उमड़ पड़ा। रामू पर ईश्वरीय कृपा का प्रपात बरस पड़ा। गुरुजी ने रामू को छाती से लगा लियाः "चल आ जा.... तू मैं है.... मैं तू हूँ.... अब अहं कहाँ रहेगा !"

ईशकृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं गावहिं वेद पुरान।।

रामू का काम बन गया, परम कल्याण उसी क्षण हो गया। रामू अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में जग गया, उसे आत्मसाक्षात्कार हो गया....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

मिलारेपा की आज्ञाकारिता

तिब्बत में करीब 850 वर्ष पहले एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया मिलारेपा। जब वह सात वर्ष का था, तब उसके पिता का देहांत हो गया। चाचा और बुआ ने उनकी सारी मिल्कियत हड़प ली। अपनी छोटी बहन और माता सहित मिलारेपा को खूब दुःख सहने पड़े। अपनी मिल्कियत पुनः पाने के लिए उसकी माता ने कई प्रयत्न किये लेकिन चाचा और बुआ ने उसके सारे प्रयत्न निष्फल कर दिये। वह तिलमिला उठी। उसके मन से किसी भी तरह से इस बात का रंज नहीं जा रहा था।

एक दिन की बात है। तब मिलारेपा की उम्र करीब 15 वर्ष थी। वह कोई गीत गुनगुनाते हुए घर लौटा। गाने की आवाज सुनकर उसकी माँ एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में राख लेकर बाहर आयी और मिलारेपा के मुँह पर राख फेंककर लाठी से उसे बुरी तरह पीटते हुए बोलीः "कैसा कुपुत्र जन्मा है तू ! अपने बाप का नाम लजा दिया।"

उसे पीटते-पीटते माँ बेहोश हो गयी। होश आने पर उसे फटकारते हुए मिलारेपा से बोलीः "धिक्कार है तुझे ! दुश्मनों से वैर लेना भूलकर गाना सीखा? सीखना हो तो कुछ ऐसा सीख, जिससे उनका वंश ही खत्म हो जाय।"

बस... मिलारेपा के हृदय में चोट लग गयी। घर छोड़कर उसने तंत्रविद्या सिखानेवाले गुरु को खोज निकाला और पूरी निष्ठा एवं भाव से सेवा करके उनको प्रसन्न किया। उनसे दुश्मनों को खत्म करने एवं हिमवर्षा करने की विद्या सीख ली। इनका प्रयोग कर उसने अपने चाचा और बुआ की खेती एवं उनके कुटुम्बियों को नष्ट कर डाला। चाचा और बुआ को उसने जिंदा रखा, ताकि वे तड़प-तड़पकर दुःख भोगते हुए मरें। यह देखकर लोग मिलारेपा से खूब भयभीत हो गये। समय बीता। मिलारेपा के हृदय की आग थोड़ी शांत हुई। अब उसने बदला लेने की वृत्ति पर पश्चाताप होने लगा। ऐसे में उसकी एक लामा (तिब्बत के बौद्ध आचार्य) के साथ भेंट हुई। उसने सलाह दीः "तुझे अगर विद्या ही सीखनी है तो एकमात्र योगविद्या ही सीख। भारत से यह योगविद्या सीखकर आय हुए एकमात्र गुरु हैं – मारपा।"

योगविद्या जानने वाले गुरु के बारे में सुनते ही उसका मन उनके दर्शन के लिए अधीर हो गया। मिलारेपा में लगन तो थी ही, साथ में दृढ़ता भी थी और तंत्रविद्या सीखकर उसने गुरु के

प्रति निष्ठा भी साबित कर दिखायी थी। एक बार हाथ में लिया हुआ काम पूरा करने में वह दृढ़ निश्चयी था। उसमें भरपूर आत्मविश्वास था। वह तो सीधा चल पड़ा मारपा को मिलने।

रास्ता पूछते-पूछते, निराश हुए बिना मिलारेपा आगे-ही-आगे बढ़ता गया। रास्ते में एक गाँव के पास खेत में उसने किसी किसान को देखा, उसके पास जाकर मारपा के बारे में पूछा। किसान ने कहाः "मेरे बदले में तू खेती कर तो मैं तुझे मारपा के पास ले जाऊँगा।"

मिलारेपा उत्साह से सहमत हो गया। थोड़े दिनों के बाद किसान ने रहस्योदघाटन किया कि वह खुद ही मारपा है। मिलारेपा ने गुरुदेव को भावपूर्वक प्रणाम किया और अपनी आपबीती कह सुनायी। उसने स्वयं के द्वारा हुए मानव-संहार की बात भी कही। बदले की भावना से किये हुए पाप के बारे में बताकर पश्चाताप किया। मिलारेपा की निखालिस स्वीकारोक्ति स गुरु का मन प्रसन्न हुआ, लेकिन उन्होंने अपनी प्रसन्नता को गुप्त ही रखा। अब मिलारेपा की परीक्षा शुरु हुई। गुरु के प्रति, श्रद्धा, निष्ठा एवं दृढ़ता की कसौटियाँ प्रारम्भ हुईं। गुरु मारपा मिलारेपा के साथ खूब कड़ा व्यवहार करते, जैसे उनमें दया की एक बूँद भी न हो। लेकिन मिलारेपा अपनी गुरुनिष्ठा में पक्का था। वह गुरु के बताये प्रत्येक कार्य को खूब तत्परता एवं निष्ठा से करने लगा।

कुछ महीने बीते, फिर भी गुरु ने मिलारेपा को कुछ ज्ञान नहीं दिया। मिलारेपा ने काफी नम्रता से गुरुजी के समक्ष ज्ञान के लिए प्रार्थना की। गुरुजी भड़क उठेः "मैं अपना सर्वस्व देकर भारत से यह योगविद्या सीखकर आया हूँ। यह तेरे जैसे दुष्ट के लिए है क्या? तूने जो पाप किये हैं वे जला दे, तो मैं तुझे यह विद्या सिखाऊँ। जो खेती तूने नष्ट की है वह उनको वापस दे दे, जिनको तूने मारा डाला है उन सबको जीवित कर दे...."

यह सुनकर मिलारेपा खूब रोया। फिर भी वह हिम्मत नहीं हारा, उसने गुरु की शरण नहीं छोड़ी।

कुछ समय और बीता। मारपा ने एक दिन मिलारेपा से कहाः "मेरे पुत्र के लिए एक पूर्वमुखी गोलाकार मकान बना दे, लेकिन याद रखना उसे बनाने में तुझे किसी की मदद नहीं लेनी है। मकान में लगने वाली लकड़ी भी तुझे ही काटनी है, गढ़नी है और मकान में लगानी है।"

मिलारेपा खुश हो गया कि 'चलो, गुरुजी की सेवा करने का मौका तो मिल रहा है न !' उसने बड़े उत्साह से कार्य शुरु कर दिया। वह स्वयं ही लकड़ियाँ काटता और उन्हें तथा पत्थरों को अपनी पीठ पर उठा-उठाकर लाता। वह स्वयं ही दूर से पानी भरकर लाता। किसी की भी मदद लेने की मनाई थी न! गुरु की आज्ञा पालने में वह पक्का था। मकान का आधा काम तो हो गया। एक दिन गुरुजी मकान देखने आये। वे गुस्से में बोलेः "धत् तेरे की ! ऐसा मकान नहीं चलेगा। तोड़ डाल इसको और याद रखना, जो चीज जहाँ से लाया है, उसे वहीं रखना।"

मिलारेपा ने बिना किसी फरियाद के गुरुजी की आज्ञा का पालन किया। फरियाद का 'फ' तक मुँह में नहीं आने दिया। कार्य पूरा किया। फिर गुरुजी ने दूसरी जगह बताते हुए कहाः "हाँ, यह जगह ठीक है। यहाँ पश्चिम की ओर द्वारवाला अर्धचन्द्राकार मकान बना दे।"

मिलारेपा पुनः काम में लग गया। काफी मेहनत के बाद आधा मकान पूरा हुआ। तब गुरुजी फिर से फटकारते हुए बोलेः "कैसा भद्दा लगता है यह ! तोड़ डाल इसे और एक-एक पत्थर उसकी मूल जगह पर वापस रख आ।"

बिल्कुल न चिढ़ते हुए उसने गुरु के शब्द झेल लिये। मिलारेपा की गुरुभक्ति गजब की थी!

थोड़े दिन बाद गुरुजी ने फिर से नयी जगह बताते हुए हुक्म कियाः "यहाँ त्रिकोणाकार मकान बना दे।"

मिलारेपा ने पुनः काम चालू कर दिया। पत्थर उठाते-उठाते उसकी पीठ एवं कंधे छिल गये थे। फिर भी उसने अपनी पीड़ा के बारे में किसी को भी नहीं बताया। त्रिकोणाकार मकान बँधकर मकान बँधकर पूरा होने आया, तब गुरुजी ने फिर से नाराजगी व्यक्त करते हुए कहाः "यह ठीक नहीं लग रहा। इसे तोड़ डाल और सभी पत्थरों को उनकी मूल जगह पर रख दे।"

इस स्थिति में भी मिलारेपा के चेहरे पर असंतोष की एक भी रेखा नहीं दिखी। गुरु के आदेश को प्रसन्न चित्त से शिरोधार्य कर उसने सभी पत्थरों को अपनी-अपनी जगह व्यवस्थित रख दिया। इस बार एक टेकरी पर जगह बताते हुए गुरु ने कहाः "यहाँ नौ खंभे वाला चौरस मकान बना दे।"

गुरुजी ने तीन-तीन बार मकान बनवाकर तुड़वा डाले थे। मिलारेपा के हाथ एवं पीठ पर छाले पड़ गये थे। शरीर की रग-रग में पीड़ा हो रही थी। फिर भी मिलारेपा गुरु से फरियाद नहीं करता कि 'गुरुजी ! आपकी आज्ञा के मुताबिक ही तो मकान बनाता हूँ। फिर भी आप मकान पसंद नहीं करते, तुड़वा डालते हो और फिर से दूसरा बनाने को कहते हो। मेरा परिश्रम एवं समय व्यर्थ जा रहा है।'

मिलारेपा तो फिर से नये उत्साह के साथ काम में लग गया। जब मकान आधा तैयार हो गया, तब मारपा ने फिर से कहाः "इसके पास में ही बारह खंभे वाला दूसरा मकान बनाओ।" कैसे भी करके बारह खंभे वाला मकान भी पूरा होने को आया, तब मिलारेपा ने गुरुजी से ज्ञान के लिए प्रार्थना की गुरुजी ने मिलारेपा के सिर के बाल पकड़कर उसको घसीटा और लात मारते हुए यह कहकर निकाल दिया कि 'मुफ्त में ज्ञान लेना है?'

दयालु गुरुमाता (मारपा की पत्नी) से मिलारेपा की यह हालत देखी नहीं गयी। उसने मारपा से दया करने की विनती की लेकिन मारपा ने कठोरता न छोड़ी। इस तरह मिलारेपा गुरुजी के ताने भी सुन लेता व मार भी सह लेता और अकेले में रो लेता लेकिन उसकी ज्ञानप्राप्ति की जिज्ञासा के सामने ये सब दुःख कुछ मायना नहीं रखते थे। एक दिन तो उसके

गुरु ने उसे खूब मारा। अब मिलारेपा के धैर्य का अंत आ गया। बारह-बारह साल तक अकेले अपने हाथों से मकान बनाये, फिर भी गुरुजी की ओर से कुछ नहीं मिला। अब मिलारेपा थक गया और घर की खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। गुरुपत्नी यह सब देख रही थी। उसका हृदय कोमल था। मिलारेपा की सहनशक्ति के कारण उसके प्रति उसे सहानुभूति थी। वह मिलारेपा के पास गयी और उसे समझाकर चोरी-छिपे दूसरे गुरु के पास भेज दिया। साथ में बनावटी संदेश-पत्र भी लिख दिया कि 'आनेवाले युवक को ज्ञान दिया जाय।' यह दूसरा गुरु मारपा का ही शिष्य था। उसने मिलारेपा को एकांत में साधना का मार्ग सिखाया। फिर भी मिलारेपा की प्रगति नहीं हो पायी। मिलारेपा के नये गुरु को लगा कि जरूर कहीं-न-कहीं गड़बड़ है। उसने मिलारेपा को उसकी भूतकाल की साधना एवं अन्य कोई गुरु किये हों तो उनके बारे में बताने को कहा। मिलारेपा ने सब बातें निखालिसता से कह दीं।

नये गुरु ने डाँटते हुए कहाः "एक बात ध्यान में रख-गुरु एक ही होते हैं और एक ही बार किये जाते हैं। यह कोई सांसारिक सौदा नहीं है कि एक जगह नहीं जँचा तो चले दूसरी जगह। आध्यात्मिक मार्ग में इस तरह गुरु बदलनेवाला धोबी के कुत्ते की नाईं न तो घर का रहता है न ही घाट का। ऐसा करने से गुरुभक्ति का घात होता है। जिसकी गुरुभक्ति खंडित होती है, उसे अपना लक्ष्य प्राप्त करने में बहुत लम्बा समय लग जाता है। तेरी प्रामाणिकता मुझे जँची। चल, हम दोनों चलते हैं गुरु मारपा के पास और उनसे माफी माँग लेते हैं।" ऐसा कहकर दूसरे गुरु ने अपनी सारी संपत्ति अपने गुरु मारपा को अर्पण करने के लिए साथ में ले ली। सिर्फ एक लंगड़ी बकरी को ही घर पर छोड़ दिया।

दोनों पहुँचे मारपा के पास। शिष्य द्वारा अर्पित की हुई सारी संपत्ति मारपा ने स्वीकार कर ली, फिर पूछाः "वह लंगड़ी बकरी क्यों नहीं लाये?" तब वह शिष्य फिर से उतनी दूरी तय करके वापस घर गया। बकरी को कंधे पर उठाकर लाया और गुरुजी को अर्पित की। यह देखकर गुरुजी बहुत खुश हुए। मिलारेपा के सामने देखते हुए बोलेः "मिलारेपा ! मुझे ऐसी गुरुभक्ति चाहिए। मुझे बकरी की जरूरत नहीं थी लेकिन मुझे तुम्हें पाठ सिखाना था" मिलारेपा ने भी अपने पास जो कुछ था उसे गुरुचरणों में अर्पित कर दिया। मिलारेपा के द्वारा अर्पित की हुई चीजें देखकर मारपा ने कहाः "ये सब चीजें तो मेरी पत्नी की हैं। दूसरे की चीजें तू कैसे भेंट में दे सकता है?" ऐसा कहकर उन्होंने मिलारेपा को धमकाया।

मिलारेपा फिर से खूब हताश हो गया। उसने सोचा कि "मैं कहाँ कच्चा साबित हो रहा हूँ, जो मेरे गुरुजी मुझ पर प्रसन्न नहीं होते?" उसने मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना की और निश्चय किया कि 'इस जीवन में गुरुजी प्रसन्न हों ऐसा नहीं लगता। अतः इस जीवन का ही गुरुजी के चरणों में बलिदान कर देना चाहिए।' ऐसा सोचकर जैसे ही वह गुरुजी के चरणों में प्राणत्याग करने को उद्यत हुआ, तुरंत ही गुरु मारपा समझ गये, 'हाँ, अब चेला तैयार हुआ है।'

मारपा ने खड़े होकर मिलारेपा को गले लगा लिया। मारपा की अमीदृष्टि मिलारेपा पर बरसी। प्यारभरे स्वर में गुरुदेव बोलेः "पुत्र ! मैंने जो तेरी सख्त कसौटियाँ लीं, उनके पीछे एक ही कारण था – तूने आवेश में आकर जो पाप किये थे, वे सब मुझे इसी जन्म में भस्मीभूत करने थे, तेरी कई जन्मों की साधना को मुझे इसी जन्म में फलीभूत करना था। तेरे गुरु को न तो तेरी भेंट की आवश्यकता है न मकान की। तेरे कर्मों की शुद्धि के लिए ही यह मकार बँधवाने की सेवा खूब महत्त्वपूर्ण थी। स्वर्ण को शुद्ध करने के लिए तपाना ही पड़ता है न ! तू मेरा ही शिष्य है। मेरे प्यारे शिष्य ! तेरी कसौटी पूरी हुई। चल, अब तेरी साधना शुरु करें।" मिलारेपा दिन-रात सिर पर दीया रखकर आसन जमाये ध्यान में बैठता। इस तरह ग्यारह महीने तक गुरु के सतत सान्निध्य में उसने साधना की। प्रसन्न हुए गुरु ने देने में कुछ बाकी न रखा। मिलारेपा को साधना के दौरान ऐसे-ऐसे अनुभव हुए, जो उसके गुरु मारपा को भी नहीं हुए थे। शिष्य गुरु से सवाया निकला। अंत में गुरु ने उसे हिमालय की गहन कंदराओं में जाकर ध्यान-साधना करने को कहा।

अपनी गुरुभक्ति, दृढ़ता एवं गुरु के आशीर्वाद से मिलारेपा ने तिब्बत में सबसे बड़े योगी के रूप में ख्याति पायी। बौद्ध धर्म की सभी शाखायें मिलारेपा की मानती हैं। कहा जाता है कि कई देवताओं ने भी मिलारेपा का शिष्यत्व स्वीकार करके अपने को धन्य माना। तिब्बत में आज भी मिलारेपा के भजन एवं स्तोत्र घर-घर में गाये जाते हैं। मिलारेपा ने सच ही कहा हैः

"गुरु ईश्वरीय शक्ति के मूर्तिमंत स्वरूप होते हैं। उनमें शिष्य के पापों को जलाकर भस्म करने की क्षमता होती है।"

शिष्य की दृढ़ता, गुरुनिष्ठा, तत्परता एवं समर्पण की भावना उसे अवश्य ही सतशिष्य बनाती है, इसका ज्वलंत प्रमाण हैं मिलारेपा। आज के कहलानेवाले शिष्यों को ईश्वरप्राप्ति के लिए, योगविद्या सीखने के लिए आत्मानुभवी सत्पुरुषों के चरणों में कैसी दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए इसकी समझ देते हैं योगी मिलारेपा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

संत गोंदवलेकर महाराज की गुरुनिष्ठा

महाराष्ट्र में औरंगाबाद से आगे येहले गाँव में संत तुकाराम चैतन्य रहते थे, जिनके लोग प्रेम से 'तुकामाई' कहते थे। वे ईश्वरीय सत्ता से जुड़े हुए बड़े उच्चकोटि के संत थे। 19 फरवरी 1854 को बुधवार के दिन गोंदवाले गाँव में गणपति नामक एक बालक का जन्म हुआ जब वह 12 वर्ष का हुआ तब तुकामाई के श्रीचरणों में आकर बोलाः 'बाबाजी ! मुझे अपने पास रख लीजिये।'

तुकामाई ने क्षणभर के लिए आँखे मूँदकर उसका भूतकाल देख लिया कि यह कोई साधारण आत्मा नहीं है और बालक गणपति को अपने पास रख लिया। तुकामाई उसे 'गणु' कहते थे। वह उनकी रसोई की सेवा करता, पैरचंपी करता, झाड़ू बुहारी करता। बाबा की सारी सेवा-चाकरी बड़ी निपुणता से करता था। बाबा उसे स्नेह भी करते किंतु कहीं थोड़ी-सी गलती हो जाती तो धड़ाक से मार भी देते।

महापुरुष बाहर से कठोर दिखते हुए भी भीतर से हमारे हितैषी होते हैं, वे ही जानते हैं। 12 साल के उस बच्चे से जब गलती होती तो उसकी ऐसी घुटाई-पिटाई होती कि देखने वाले बड़े-बड़े लोग भी तौबा पुकार जाते, लेकिन गणु ने कभी गुरुद्वार छोड़ने का सोचा तक नहीं। उस पर गुरु का स्नेह भीतर से बढ़ता गया। एक बार तुकामाई गणु को लेकर नदी में स्नान के लिए गये। वहाँ नदी पर तीन माइयाँ कपड़े धो रही थीं। उन माइयों के तीन छोटे-छोटे बच्चे आपस में खेल रहे थे। तुकामाई ने कहाः "गणु ! गड्डा खोद।"

एक अच्छा-खासा गड्ढा खुदवा लिया। फिर कहाः "ये जो बच्चे खेल रहे हैं न, उन्हें वहाँ ले जा और गड्ढे में डाल दे। फिर ऊपर से जल्दी-जल्दी मिट्टी डाल के आसन जमाकर ध्यान करने लग।"

इस प्रकार तुकामाई ने गणु के द्वारा तीन मासूम बच्चों को गड्ढे में गड़वा दिया और खुद दूर बैठ गये। गणु बालू का टीला बनाकर ध्यान करने बैठ गया। कपड़े धोकर जब माइयों ने अपने बच्चों को खोजा तो उन्हें वे न मिले। तीनों माइयाँ अपने बच्चों को खोजते-खोजते परेशान हो गयीं। गणु को बैठे देखकर वे माइयाँ उससे पूछने लगीं कि 'ए लड़के ! क्या तूने हमारे बच्चों को देखा है?'

माइयाँ पूछ-पूछ कर थक गयीं। लेकिन गुरु-आज्ञापालन की महिमा जानने वाला गणु कैसे बोलता? इतने में माइयों ने देखा कि थोड़ी दूरी पर परमहंस संत तुकामाई बैठे हैं। वे सब उनके पास गयीं और बोलीं- "बाबा ! हमारे तीनों बच्चे नहीं दिख रहे हैं। आपने कहीं देखे हैं?"

बाबाः "वह जो लड़का आँखें मूँदकर बैठा है न, उसको खूब मारो-पीटो। तुम्हारे बेटे उसी के पास हैं। उसको बराबर मारो तब बोलेगा।"

यह कौन कह रहा है? गुरु कह रहे हैं। किसके लिए? आज्ञाकारी शिष्य के लिए। हद हो गयी ! गुरु कुम्हार की तरह अंदर हाथ रखते हैं और बाहर से घुटाई-पिटाई करते हैं।

गुरु कुंभार शिष्य कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहारि दे, बाहर मारे चोट।।

माइयों ने गणु को खूब मारा पीटा, किंतु उसने कुछ न कहा। ऐसा नहीं बोला कि, 'मुझको तो गुरु ने कहा है।' मार-मारकर उसको अधमरा कर दिया किंतु गणु कुछ नहीं बोला। आखिर तुकामाई आये और बोलेः "अभी तक नहीं बोलता है? और मारो इसको। इसी बदमाश ने तुम्हारे बच्चों को पकड़कर गड्ढे में डाल दिया है। ऊपर मिट्टी डालकर साधु बनने का ढोंग करता है।"

माइयों ने टीला खोदा तो तीनों बच्चों की लाश मिली। फिर तो माइयों का क्रोध.... अपने मासूम बच्चों तो मारकर ऊपर से मिट्टी डालकर कोई बैठ जाय, उस व्यक्ति को कौन-सी माई माफ करेगी? माइयाँ पत्थर ढूँढने लगीं कि इसको तो टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

तुकामाईः "तुम्हारे बच्चे मार दिये न?"

"हाँ, अब इसको हम जिंदा न छोड़ेंगी।"

"अरे, देखो अच्छी तरह से। मर गये हैं कि बेहोश हो गये हैं? जरा हिलाओ तो सही।"

गाड़े हुए बच्चे जिंदा कैसे मिल सकते थे? किंतु महात्मा ने अपना संकल्प चलाया।

यदि व संकल्प चलाये, मुर्दा भी जीवित हो जाये।।

तीनों बच्चे हँसते-खेलते खड़े हो गये। अब वे माइयाँ अपने बच्चों से मिलतीं कि गणु को मारने जातीं? माइयों ने अपने बच्चों को गले लगाया और उन पर वारी-वारी जाने लगीं। मेले जैसा माहौल बन गया। तुकामाई महाराज माइयों की नजर बचाकर अपने गणु को लेकर आश्रम में पहुँच गये, फिर पूछाः "गणु ! कैसा रहा?"

"गुरुकृपा है !"

गणु के मन में यह नहीं आया कि 'गुरुजी ने मेरे हाथ से तो बच्चे गड़वा दिये और फिर माइयों से कहा कि इस बदमाश छोरे ने तुम्हारे बच्चों को मार डाला है। इसको बराबर मारो तो बोलेगा। फिर भी मैं नहीं बोला....'

कैसी-कैसी आत्माएँ इस देश में हो गयीं ! आगे चलकर वही गणु बड़े उच्चकोटि के प्रसिद्ध महात्मा गोंदवलेकर महाराज हो गये। उनका देहावसान 22 दिसम्बर 1913 के दिन हुआ। अभी भी लोग उन महापुरुष के लीलास्थान पर आदर से जाते हैं।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

संत श्री आसारामजी बापू का मधुर संस्मरण

एक बार नैनीताल में गुरुदेव (स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज) के पास कुछ लोग आये। वे 'चाइना पीक' (हिमालय पर्वत का एक प्रसिद्ध शिखर देखना चाहते थे। गुरुदेव ने मुझसे कहाः "ये लोग चाइना पीक देखना चाहते हैं। सुबह तुम जरा इनके साथ जाकर दिखा के आना।"

मैंने कभी चाइना पीक देखा नहीं था, परंतु गुरुजी ने कहाः "दिखा के आओ।" तो बात पूरी हो गयी।

सुबह अँधेरे-अँधेरे में मैं उन लोगों को ले गया। हम जरा दो-तीन किलोमीटर पहाड़ियों पर चले और देखा कि वहाँ मौसम खराब है। जो लोग पहले देखने गये थे वे भी लौटकर आ रहे थे। जिनको मैं दिखाने ले गया था वे बोलेः "मौसम खराब है, अब आगे नहीं जाना है।"

मैंने कहाः "भक्तो ! कैसे नहीं जाना है, बापूजी ने मुझे आज्ञा दी है कि 'भक्तों को चाइना पीक दिखाके आओ' तो मैं आपको उसे देखे बिना कैसे जाने दूँ?"

वे बोलेः "हमको नहीं देखना है। मौसम खराब है, ओले पड़ने की संभावना है।"

मैंने कहाः "सब ठीक हो जायेगा।" लेकिन थोड़ा चलने के बाद वे फिर हतोत्साहित हो गये और वापस जाने की बात करने लगे। 'यदि कुहरा पड़ जाय या ओले पड़ जायें तो....' ऐसा कहकर आनाकानी करने लगे। ऐसा अनेकों बार हुआ। मैं उनको समझाते-बुझाते आखिर गन्तव्य स्थान पर ले गया। हम वहाँ पहुँचे तो मौसम साफ हो गया और उन्होंने चाइनाप देखा। वे बड़ी खुशी से लौट और आकर गुरुजी को प्रणाम किया।

गुरुजी बोलेः "चाइना पीक देख लिया?"

वे बोलेः "साँई ! हम देखने वाले नहीं थे, मौसम खराब हो गया था परंतु आसाराम हमें उत्साहित करते-करते ले गये और वहाँ पहुँचे तो मौसम साफ हो गया।"

उन्होंने सारी बातें विस्तार से कह सुनायीं। गुरुजी बोलेः "जो गुरु की आज्ञा दृढ़ता से मानता है, प्रकृति उसके अनुकूल जो जाती है।" मुझे कितना बड़ा आशीर्वाद मिल गया ! उन्होंने तो चाइना पीक देखा लेकिन मुझे जो मिला वह मैं ही जानता हूँ। आज्ञा सम नहीं साहिब सेवा। मैंने गुरुजी की बात काटी नहीं, टाली नहीं, बहाना नहीं बनाया, हालाँकि वे तो मना ही कर रहे थे। बड़ी कठिन चढ़ाईवाला व घुमावदार रास्ता है चाइना पीक का और कब बारिश आ जाये, कब आदमी को ठंडी हवाओं का, आँधी-तूफानों का मुकाबला करना पड़े, कोई पता नहीं। किंतु कई बार मौत का मुकाबला करते आये हैं तो यह क्या होता है? कई बार तो मरके भी आये, फिर इस बार गुरु की आज्ञा का पालन करते-करते मर भी जायेंगे तो अमर हो जायेंगे, घाटा क्या पड़ता है?

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

स्वामी विवेकानन्दजी की गुरुभक्ति

विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्दजी अपना जीवन अपने गुरुदेव स्वामी रामकृष्ण परमहंस को समर्पित कर चुके थे। श्री रामकृष्ण परमहंस के शरीर-त्याग के दिनों में वे अपने घर और कुटुम्ब की नाजुक हालत की परवाह किये बिना, स्वयं के भोजन की परवाह किये बिना गुरुसेवा में सतत हाजिर रहते। गले के कैंसर के कारण रामकृष्ण परमहंस का शरीर अत्यंत रुग्ण हो

गया था। गले में से थूक, रक्त कफ आदि निकलता था। इन सबकी सफाई वे खूब ध्यान से एवं प्रेम से करते थे।

एक बार किसी शिष्य ने श्री रामकृष्ण की सेवा में लापरवाही दिखायी तथा घृणा से नाक-भौहं सिकोड़ी। यह देखकर विवेकानन्द जी को गुस्सा आ गया। उस गुरुभाई को पाठ पढ़ाते हुए और गुरुदेव की प्रत्येक वस्तु के प्रति प्रेम दर्शाते हुए वे उनके बिस्तर के पास रखी रक्त, कफ आदि से भी भरी थूकदानी उठाकर पूरी पी गये।

गुरु के प्रति ऐसी अनन्य भक्ति और निष्ठा के प्रताप से ही वे गुरु के शरीर की और उनके दिव्यतम आदर्शों को लोगों तक पहुँचाने की उत्तम सेवा कर सके। गुरुदेव को वे समझ सके, स्वयं के अस्तित्व को गुरुदेव के स्वरूप में विलीन कर सके। समग्र विश्व में भारत के अमूल्य आध्यात्मिक खजाने की महक फैला सके।

स्वामी विवेकानंद गुरुभक्ति के विषय में कहते हैं- "स्वानुभूति ज्ञान की परम सीमा है, वह ग्रन्थों से नहीं प्राप्त हो सकती। पृथ्वी का पर्यटन कर चाहे आप सारी भूमि पदाक्रांत कर डालें, हिमालय, काकेशस, आल्पस पर्वत लाँघ जायें, समुद्र में गोता लगाकर उसकी गहराई में बैठ जायें, तिब्बत देश देख लें या गोबी (अफ्रीका) का मरुस्थल छान डालें, परंतु स्वानुभव का यथार्थ धर्मरहस्य इन बातों से, श्रीगुरु के कृपा-प्रसाद के बिना त्रिकाल में भी ज्ञात नहीं होगा। इसलिए भगवान की कृपा से जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरु दर्शन दे, तब सर्वान्तःकरण से श्रीगुरु की शरण लो, उन्हें ऐसा समझो जैसे यही परब्रह्म हों, उनके बालक बनकर अनन्यभाव से उनकी सेवा करो, इससे आप धन्य होंगे। ऐसे परम प्रेम और आदर के साथ जो श्रीगुरु के शरणागत हुए, उन्हीं को और केवल उन्हीं को सच्चिदानन्द प्रभु ने प्रसन्न होकर अपनी परम भक्ति दी है और अध्यात्म के अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

भाई लहणा का अडिग विश्वास

खडूरगाँव (जि. अमृतसर, पंजाब) के लहणा चौधरी गुरु नानकदेव के शरणागत हुए। गुरु नानक उन्हें भाई लहणा कहते थे।

करतार में गुरु नानक देव ने पशुओं की देखभाल करने की सेवा भाई लहणा को सौंप दी। वहाँ और भी कई शिष्य थे जो खेती-बाड़ी व पशुओं की देखरेख करते थे। एक बार लगातार कई दिनों तक वर्षा होती रही। जब वर्षा बन्द हुई तो चारों ओर कीचड़ ह गया। पशुओं का चारा समाप्त हो गया था लेकिन कोई भी शिष्य चारा लाने के लिए जाने को तैयार नहीं था, क्योंकि उस कीचड़ में, कीचड़ से भरी घास लाना कोई आसान कार्य न था। भाई लहणा चारा लेने चले

गये। जब वे चारा लेकर लौटे तो उनके कपड़े ही नहीं, सारा शरीर भी कीचड़ से लथपथ था, परंतु उन्हें इस बात का कोई दुःख नहीं था क्योंकि गुरुसेवा को ही उन्होंने अपना सर्वस्व बना लिया था।

एक बार गुरु नानक ने जानबूझकर अपना काँसे का कटोरा कीचड़ के भरे एक गड्ढे में फेंक दिया और अपने पुत्रों तथा शिष्यों को आदेश दिया कि वे कटोरा निकाल लायें। गड्ढे में घुटने से भी ऊपर तक कीचड़ भरा हुआ था। सब लोग कोई-न-कोई बहाना बनाकर खिसक गये। भाई लहणा तत्काल गड्ढे में उतर गये कटोरा निकाल लाये। उन्हें इस बात की रत्तीभर भी चिंता नहीं हुई कि कीचड़ उनके शरीर पर लग जायेगा और उनके कपड़े कीचड़ से भर जायेंगे। उनके लिए तो गुरुदेव का आदेश ही सर्वोपरि था।

एक दिन कुछ भक्त लंगर (सामूहिक भोजन) खत्म हो जाने के बाद डेरे पर पहुँचे। वे बहुत दूर से चलकर आये थे। उन्हें भूख लगी थी। गुरुनानक देव ने अपने दोनों पुत्रों को सामने खड़े बबूल के एक पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहाः "तुम दोनों उस पेड़ पर चढ़ जाओ और डालियों को जोर-से हिलाओ। इससे तरह-तरह की मिठाइयाँ टपकेंगी। वे इन लोगों को खिला देना।"

गुरु नानक की बात सुनकर उनके दोनों पुत्र आश्चर्य से उनका मुँह देखने लगे। 'पेड़ से.... और वह भी बबूल के पेड़ से... मिठाइयाँ, भला कैसे टपक सकती हैं? पिताजी अकारण ही हमारा मजाक उड़वाना चाहते हैं।' ऐसा सोचकर वे दोनों चुपके-से वहाँ से खिसक गये। गुरु नानक ने अपने अन्य शिष्यों से भी यही कहा परंतु कोई तैयार नहीं हुआ। सब शिष्य यही सोच रहे थे कि गुरुदेव उन्हें बेवकूफ बनाना चाहते हैं।

भाई लहणा को गुरु नानकदेव में अगाध श्रद्धा थी, अडिग विश्वास था। वे उठे, बबूल के पेड़ पर जा चढ़े और उसकी डालियाँ जोर-से हिलानी शुरु कर दी। दूसरे ही पल काँटों से भरे बबूल के पेड़ से तरह-तरह की स्वादिष्ट मिठाइयाँ टपकने लगीं। वहाँ उपस्थित लोगों की आँखें आश्चर्य से फटी रह गयीं। भाई लहणा ने पेड़ से उतरकर मिठाइयाँ इकट्ठी कीं और आये हुए भक्तों को खिला दीं।

पुत्रों ने नानक जी की अवज्ञा की लेकिन भाई लहणा के मन में ईश्वररूप गुरुनानक के किसी भी शब्द के प्रति अविश्वास का नामोनिशान तक नहीं था। भगवान श्रीकृष्ण के पुत्रों ने भी श्रीकृष्ण की अवज्ञा की, उनका फायदा नहीं उठाया, चमचों के चक्कर में रहे जबकि आज भी लाखों लोग श्रीकृष्ण से फायदा उठा रहे हैं। "अतिसान्निध्यात् भवेत अवज्ञा।" जिन्हें अति सान्निध्य मिलता है वे लाभ नहीं उठाते। कैसा आश्चर्य है !

गुरु नानक समाधि लगाये अपनी गद्दी पर बैठे थे। उनके सामने बैठे अनेक शिष्य उनके उपदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। अचानक उन्होंने आँखें खोलीं, एक नजर सामने बैठे शिष्यों पर डाली और फिर पास ही पड़ा डंडा उठाकर शिष्यों पर टूट पड़े। जो भी सामने आया, उस पर डंडे

बरसाने लगे। उनकी रौद्र मूर्ति और पागलों जैसी अवस्था देखकर उनके दोनों पुत्र तथा अन्य शिष्य शीघ्रता से भागे, परंतु भाई लहणा वहीं खड़े रहे एवं गुरु नानक के डंडों की मार बड़े शांत भाव से सहन करते रहे।

गुरु नानक देव ने भाई लहणा की अनेक परीक्षाएँ लीं परंतु वे सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। तब उन्होंने सबसे अधिक भीषण परीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। वे कुछ देर तक इसी तरह पागलों जैसी हरकतें करते रहे और फिर जंगल की चल दिये। उनकी पागलों जैसी हरकत देखकर बहुत-से कुत्ते उनके पीछे लग गये, परंतु गुरुनानक अपने डंडे से उन्हें धमकाते हुए जंगल की ओर बढ़ते रहे। यह देखकर उनके कुछ शिष्य और दोनों पुत्र भी उनके पीछे-पीछे चल दिये। उन शिष्यों में भाई लहणा भी शामिल थे। चलते-चलते गुरु नानक श्मशान में पहुँचे और कफन से ढके एक मुर्दे के पास जाकर रुक गये। वे बड़े ध्यान से उस मुर्दे को देख ही रहे थे कि उनके दोनों पुत्र और शिष्य भी वहाँ पहुँच गये।

"तुम लोग बहुत दूर से मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो। दोपहर का वक्त है, भोजन का समय हो चुका है। तुम लोगों को भूख भी लगी होगी। तुम्हें आज बहुत ही स्वादिष्ट चीज खिलाता हूँ।" यह कहकर गुरु नानक देव ने मुर्दे की ओर इशारा किया और अपने पुत्रों तथा शिष्यों की ओर देखते हुए बोलेः "इसे खाओ।"

यह बात सुनकर सब लोग स्तब्ध रह गये। कितना विचित्र और भयानक था गुरु का आदेश ! उनके दोनों पुत्रों और शिष्यों ने घृणा से अपने मुँह फेर लिए और वहाँ से खिसकने लगे, परंतु भाई लहणा आगे बढ़े और पूछाः "गुरुदेव ! इस मुर्दे को किस ओर से खाना शुरु करूँ, सिर की ओर से या पैरों की ओर से?" गुरु नानक ने कहाः "पैरों की ओर से खाना शुरु करो।"

"जो आज्ञा !" कहकर भाई लहणा मुर्दे के पैरों के पास जा बैठे। उनके मन में न घृणा थी, न कोई परेशानी ही। उन्होंने हाथ बढ़ाकर मुर्दे के ऊपर पड़ा कफन हटा दिया। कफन के नीचे कोई मुर्दा नहीं था। वह सफेद चादर धरती पर इस तरह पड़ी थी, जैसे उससे किसी लाश को ढक दिया गया हो। गुरु नानक देव के चेहरे पर करुणाभरी मुस्कराहट खिल उठी। उनकी आँखें स्नेह से चमक उठीं। उन पर छाया हुआ पागलपन जाता रहा और वे सामान्य स्थिति में आ गये। उन्होंने आगे बढ़कर भाई लहणा को अपनी बाँहों में भर हृदय से लगा लिया। उनका हृदय छलक पड़ा और वे कृपापूर्ण स्वर में बोलेः "आज से तुम्हारा नाम भाई लहणा नहीं, अंगददेव है। मैंने तुम्हें अपने अंग से लगा लिया है। अब तुम मेरे ही प्रतिरूप हो।"

कैसे थे शिष्य ! जिन्होंने गुरुओं का माहात्म्य जानकर समझा कि गुरुओं की कृपा कैसे पचायी जाती है और आज के.......

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

संत एकनाथजी की अनन्य गुरुनिष्ठा

संत एकनाथ देवगढ़ राज्य के दीवान श्री जनार्दन स्वामी के शिष्य थे। 12 वर्ष की छोटी उम्र में ही उन्होंने श्रीगुरुचरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया था। वे गुरुदेव के कपड़े धोते, पूजा के लिए फूल लाते, गुरुदेव भोजन करते तब पंखा झलते, गुरुदेव के नाम आये हुए पत्र पढ़ते और उनके संकेत-अनुसार उनका जवाब देते और गुरुपुत्रों की देखभाल करते। ऐसे एवं अन्य भी कई प्रकार के छोटे-मोटे काम वे गुरुचरणों में करते। एक बार जनार्दन स्वामी ने एकनाथ जी को राजदरबार का हिसाब करने को कहा। एकनाथ जी बहियाँ लेकर हिसाब करने बैठ गये। दूसरे ही दिन प्रातः हिसाब-किताब राजदरबार में बताना था। सारा दिन हिसाब-किताब लिखने व देखने बीत गया। हिसाब में एक पाई (एक पुराना सिक्का, जो पैसे का एक तिहाई होता था) की भूल आ रही थी। रात हुई, नौकर दीपक जलाकर चला गया। एकनाथ को पता भी नहीं चला कि रात शुरु हो गयी है। आधी रात बीत गयी फिर भी भूल पकड़ में नहीं आयी लेकिन वे अपने काम में लगे रहे।

प्रातः जल्दी उठकर गुरुदेव ने देखा कि एकनाथ तो अभी भी हिसाब देख रहे हैं। वे आकर दीपक के आगे चुपचाप खड़े हो गये। बहियों पर थोड़ा अँधेरा छा गया, फिर भी एकनाथ एकाग्रचित्त से बहियाँ देखते रहे। वे अपने काम में इतने मशगूल थे कि अँधेरे में भी उन्हें अक्षर साफ दिख रहे थे। इतने में भूल पकड़ में आ गयी वे हर्ष से चिल्ला उठेः "मिल गयी... मिल गयी....!"

गुरुदेव ने पूछाः "क्या मिल गयी, बेटी?"

एकनाथ जी चौंक गये ! ऊपर देखो तो गुरुदेव सामने खड़े हैं ! उठकर प्रणाम किया और बोलेः "गुरुदेव ! एक पाई की भूल पकड़ में नहीं आ रही थी। अब वह मिल गयी।"

हजारों हिसाब में एक पाई की भूल !.... और उसको पकड़ने के लिए रात भर जागरण ! गुरु की सेवा में इतनी लगन, इतनी तितिक्षा और भक्ति देखकर दीवान जनार्दन स्वामी के हृदय में गुरुकृपा उछाले मारने लगी। उन्हें ज्ञानामृत की वर्षा करने के योग्य अधिकारी का उर-आँगन (हृदय) मिल गया। सदगूरु की आध्यात्मिक वसीयत सँभालनेवाला सतशिष्य मिल गया। उसके बाद एकनाथ जी के जीवन में ज्ञान का सूर्य उदय हुआ और उनके सान्निध्य में अनेक साधकों ने अपनी आत्मज्योति जगाकर धन्यता का अनुभव किया। साक्षात गोदावरी माता भी अपने में लोगों द्वारा छोड़े गये पापों को धोने के लिए इन ब्रह्मनिष्ठ संत के सत्संग में आती थीं। संत एक नाथ जी के 'एकनाथी भागवत' को सुनकर आज भी लोग तृप्त होते हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अमीर खुसरो की गुरुभक्ति

हजरत निजामुद्दीन औलिया के हजारों शिष्य थे। उनमें से 22 ऐसे समर्पित शिष्य थे जो उन्हें खुदा मानते थे, अल्लाह का स्वरूप मानते थे। एक बार हजरत निजामुद्दीन औलिया ने उनकी परीक्षा लेनी चाहिए। वे शिष्यों के साथ दिन भर दिल्ली के बाजार में घूमे। रात्रि हुई तो औलिया एक वेश्या की कोठी पर गये। वेश्या उन्हें बड़े आदर से कोठी की ऊपरी मंजिल पर ले गयी। सभी शिष्य नीचे इंतजार करने लगे कि 'गुरुजी अब नीचे पधारेगे... अब पधारेंगे।' वेश्या तो बड़ी प्रसन्न हो गयी कि मेरे ऐसे कौने-से सौभाग्य हैं जो ये दरवेश मेरे द्वार पर पधारे? उसने औलिया से कहाः "मैं तो कृतार्थ हो गयी जो आप मेरे द्वार पर पधारे। मैं आपकी क्या खिदमत करूँ?"

औलिया ने कहाः "अपनी नौकरानी के द्वारा भोजन का थाल और शराब की बोतल में पानी इस ढंग से मँगवाना कि मेरे चेलों को लगे कि मैंने भोजन व शराब मँगवायी है।" वेश्या को तो हुक्म का पालन करना था। उसने अपने नौकरानी से कह दिया।

थोड़ी देर बाद नौकरानी तदनुरूप आचरण करती हुई भोजन का थाल और शराब की बोतल ले कर ऊपर जाने लगी। तब कुछ शिष्यों को लगा कि 'अरे ! हमने तो कुछ और सोचा था, किंतु निकला कुछ और.... औलिया ने तो शराब मँगवायी है.... 'ऐसा सोचकर कुछ शिष्य भाग गये। ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती गयी, त्यों-त्यों एक-एक करके शिष्य खिसकने लगे। ऐसा करते-करते सुबह हो गयी। निजामूद्दीन औलिया नीचे उतरे। देखा तो केवल अमीर खुसरो ही खड़े थे। अनजान होकर उन्होंने पूछाः "सब कहाँ चले गये?"

अमीर खुसरोः "सब भाग गये।"

औलियाः "तू क्यों नहीं भागा? तूने देखा नहीं क्या कि मैंने शराब की बोतल मँगवायी और सारी रात वेश्या के पास रहा?"

अमीर खुसरोः "मालिक ! भागता तो मैं भी किंतु आपके कदमों के सिवाय और कहाँ भागता?"

निजामुद्दीन औलिया की कृपा बरस पड़ी और बोलेः "बस, हो गया तेरा काम पूरा।"

कैसी अनन्य निष्ठा थी अमीर खुसरो की !

आज भी निजामुद्दीन औलिया की मजार के पास ही उनके सतशिष्य अमीर खुसरो की मजार उनकी गुरुनिष्ठा, गुरुभक्ति की खबर दे रही है।

सतगुरु दाता सर्ब के, तू किर्पिन कंगाल।
गुरु-महिमा जाने नहीं, फँसयौ मोह के जाल।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आनंद की अटूट श्रद्धा

गुरु को केवल तत्त्व मानकर उनकी देह का अनादर करेंगे तो हम निगुरे रह जायेंगे। जिस देह में वह तत्त्व प्रकट होता है, वह देह भी चिन्मय, आनंदस्वरूप हो जाती है। समर्थ रामदास का आनंद नाम का एक शिष्य था। वे उसको बहुत प्यार करते थे। यह देखकर अन्य शिष्यों को ईर्ष्या होने लगी। वे सोचतेः "हम भी शिष्य हैं, हम भी गुरुदेव की सेवा करते हैं फिर भी गुरुदेव हमसे ज्यादा आनन्द को प्यार करते हैं।"

ईर्ष्यालु शिष्यों को सीख देने के लिए एक बार समर्थ रामदास ने एक युक्ति की। अपने पैर में एक कच्चा आम बाँधकर ऊपर कपड़े की पट्टी बाँध दी। फिर पीड़ा से चिल्लाने लगेः "पैर में फोड़ा निकला है.... बहुत पीड़ा करता है... आह...! ऊह...!"

कुछ दिनों में आम पक गया और उसका पीला रस बहने लगा। गुरुजी पीड़ा से ज्यादा कराहने लगे। उन्होंने सब शिष्यों को बुलाकर कहाः "अब फोड़ा पक गया है, फट गया है। इसमें से मवाद निकल रहा है। मैं पीड़ा से मरा जा रहा हूँ। कोई मेरी सेवा करो। यह फोड़ा कोई अपने मुँह से चूस ले तो पीड़ा मिट सकती है।"

सब शिष्य एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। बहाने बना-बनाकर सब एक-एक करके खिसकने लगे। शिष्य आनंद को पता चला। वह तुरन्त आया और गुरुदेव के पैर को अपना मुँह लगाकर फोड़े का मवाद चूसने लगा। गुरुदेव का हृदय भर आया। वे बोलेः "बस.... आनंद ! बस मेरी पीड़ा चली गयी।"

मगर आनंद ने कहाः "गुरुजी ! ऐसा माल मिल रहा है फिर छोड़ूँ कैसे?" ईर्ष्या करने वाले शिष्यों के चेहरे फीके पड़ गये।

बाहर से फोड़ा दिखते हुए भी भीतर तो आम का रस था। ऐसे ही बाहर से अस्थि-मांसमय दिखनेवाले गुरुदेव के शरीर में आत्मा का रस टपकता है। महावीर स्वामी के समक्ष बैठने वालों को पता था कि क्या टपकता है महावीर के सान्निध्य में बैठने से। संत कबीरजी के इर्द-गिर्द बैठनेवालों को पता था, श्रीकृष्ण के साथ खेलने वाले ग्वालों और गोपियों को पता था कि उनके सान्निध्य में क्या बरसता है।

अभी तो विज्ञान भी साबित करता है कि हर व्यक्ति के स्पंदन (वायब्रेशन) उसके इर्द-गिर्द फैले रहते हैं। लोभी और क्रोधी के इर्द-गिर्द राजसी-तामसी स्पंदन फैले रहते हैं और संत-महापुरुषों के इर्द-गिर्द आनंद-शांति के स्पंदन फैले रहते हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

एकलव्य की गुरु-दक्षिणा

विषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य एक दिन हस्तिनापुर आया और उसने उस समय के धनुर्विद्या के सर्वश्रेष्ठ आचार्य, कौरव-पाण्डवों के शस्त्र-गुरु द्रोणाचार्यजी के चरणों मे दूर से साष्टाँग प्रणाम किया। अपनी वेश-भूषा से ही वह अपने वर्ण की पहचान दे रहा था। आचार्य द्रोण ने जब उससे आने का कारण पूछा, तब उसने प्रार्थनापूर्वक कहाः "मैं आपके श्रीचरणों के समीप रहकर धनुर्विद्या की शिक्षा लेने आया हूँ।"

आचार्य संकोच में पड़ गये। उस समय कौरव तथा पाण्डव बालक थे और आचार्य उन्हें शिक्षा दे रहे थे। एक भील बालक उनके साथ शिक्षा पाये, यह राजकुमारों को स्वीकार नहीं होता और यह उनकी मर्यादा के अनुरूप भी नहीं था। अतएव उन्होंने कहाः "बेटा एकलव्य ! मुझे दुःख है कि मैं किसी द्विजेतर बालक को शस्त्र-शिक्षा नहीं दे सकता।"

एकलव्य ने तो द्रोणाचार्यजी को मन-ही-मन गुरु मान लिया था। जिन्हें गुरु मान लिया, उनकी किसी भी बात को सुनकर रोष या दोषदृष्टि करने की तो बात ही मन में कैसे आती? एकलव्य के मन में भी निराशा नहीं हुई। उसने आचार्य के सम्मुख दण्डवत प्रणाम किया और बोलाः "भगवन् ! मैंने तो आपको गुरुदेव मान लिया है। मेरे किसी काम से आपको संकोच हो, यह मैं नहीं चाहता। मुझे केवल आपकी कृपा चाहिए।"

बालक एकलव्य हस्तिनापुर से लौटकर घर नहीं गया। वह वन में चला गया और वहाँ उसने गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनायी। वह गुरुदेव की मूर्ति को टकटकी लगाकर देखता, प्रार्थना करता तथा आत्मरूप गुरु से प्रेरणा पाता और धनुर्विद्या के अभ्यास में लग जाता। ज्ञान के एकमात्र दाता तो भगवान ही हैं। जहाँ अविचल श्रद्धा और दृढ़ निश्चय होता है, वहाँ सबके हृदय में रहने वाले वे श्रीहरि गुरुरूप में या बिना बाहरी गुरु के भी ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं। महीने-पर-महीने बीतते गये, एकलव्य का अभ्यास अखण्ड चलता रहा और वह महान धनुर्धर हो गया।

एक दिन समस्त कौरव और पाण्डव आचार्य द्रोण की अनुमति से रथों पर बैठकर हिंसक पशुओं का शिकार खेलने निकले। संयोगवश इनके साथ का एक कुत्ता भटकता हुआ एकलव्य के पास पहुँच गया और काले रंग के तथा विचित्र वेशधारी एकलव्य को देखकर भौंकने लगा। एकलव्य के केश बढ़ गये थे और उसके पास वस्त्र के स्थान पर व्याघ्र-चर्म ही था। वह उस समय अभ्यास कर रहा था। कुत्ते के भौंकने से अभ्यास में बाधा पड़ती देख उसने सात बाण चलाकर कुत्ते का मुख बंद कर दिया। कुत्ता भागता हुआ राजकुमारों के पास पहुँचा। सबने बड़े आश्चर्य से देखा कि बाणों से कुत्ते को कहीं भी चोट नहीं लगी है, किंतु वे बाण आड़े-तिरछे उसके मुख में इस प्रकार फँसे हैं कि कुत्ता भौंक नहीं सकता। बिना चोट पहुँचाये इस प्रकार कुत्ते के मुख में बाण भर देना, बाण चलाने का बहुत बड़ा कौशल है।

अर्जुन इस कौशल को देखकर बहुत चकित हुए। उन्होंने लौटने पर सारी घटना गुरु द्रोणाचार्यजी को सुनायी और कहाः "गुरुदेव ! आपने वरदान दिया था कि आप मुझे पृथ्वी का सबसे बड़ा धनुर्धर बना देंगे, किंतु इतना कौशल तो मुझमें भी नहीं है।"

द्रोणाचार्य जी ने अर्जुन को साथ लेकर उस बाण चलानेवाले को वन में ढूँढना प्रारम्भ किया और ढूँढते-ढूँढते वे एकलव्य के आश्रम पर पहुँच गये। आचार्य को देखकर एकलव्य उनके चरणों में गिर पड़ा।

द्रोणाचार्य ने पूछाः "सौम्य ! तुमने धनुर्विद्या का इतना उत्तम ज्ञान किससे प्राप्त किया है?"

एकलव्य ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहाः "भगवन् ! मैं तो आपके श्रीचरणों का ही दास हूँ।"

उसने आचार्य की मिट्टी की उस मूर्ति की ओर संकेत किया। द्रोणाचार्य ने कुछ सोचकर कहाः "भद्र ! मुझे गुरुदक्षिणा नहीं दोगे?"

"आज्ञा करें भगवन् !" एकलव्य ने अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हुए कहा।

द्रोणाचार्य ने कहाः "मुझे तुम्हारे दाहिने हाथ का अँगूठा चाहिए !"

दाहिने हाथ का अँगूठा न रहे तो बाण चलाया ही कैसे जा सकता है? इतने दिनों की अभिलाषा, इतना अधिक परिश्रम, इतना अभ्यास-सब व्यर्थ हुआ जा रहा था, किंतु एकलव्य के मुख पर खेद की एक रेखा तक नहीं आयी। उस वीर गुरुभक्त बालक ने बायें हाथ में छुरा लिया और तुरंत अपने दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर अपने हाथ में उठाकर गुरुदेव के सामने धर दिया।

भरे कण्ठ से द्रोणाचार्य ने कहाः "पुत्र ! सृष्टि में धनुर्विद्या के अनेकों महान ज्ञाता हुए हैं और होंगे, किंतु मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे इस भव्य त्याग और गुरुभक्ति का सुयश सदा अमर रहेगा। ऊँची आत्माएँ, संत और भक्त भी तुम्हारी गुरुभक्ति का यशोगान करेंगे।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

नाग महाशय का अदभुत गुरु-प्रेम

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य शिष्य श्री दुर्गाचरण नाग संसारी बातों में रूचि नहीं लाते थे। यदि कोई ऐसी बात शुरु करता तो वे युक्ति से उस विषय को आध्यात्मिक चर्चा में बदल देते थे। यदि उनको किसी पर क्रोध आता तो उस वक्त उन्हें जो भी वस्तु मिल जाती उससे अपने-आपको पीटने लगते और स्वयं को सजा देते। वे न तो किसी का विरोध करते और न ही निन्दा ही।

एक बार अनजाने में उनके द्वारा किसी व्यक्ति के लिए निन्दात्मक शब्द निकल गये। जैसे ही वे सावधान हुए, वैसे ही एक पत्थर उठाकर अपने ही सिर पर जोर-जोर से तब तक मारते रहे जब तक कि खून न बहने लगा। इस घाव को ठीक होने में एक महीना लग गया।

इस विचित्र कार्य को योग्य ठहराते हुए उन्होंने कहाः "दुष्ट को सही सजा मिलनी ही चाहिए।"

स्वामी रामकृष्ण को जब गले का कैंसर हो गया था, तब नाग महाशय रामकृष्णदेव की पीड़ा को देख नहीं पाते थे। एक दिन जब नाग महाशय उनको प्रणाम करने गये, तब रामकृष्णदेव ने कहाः

"ओह ! तुम आ गये। देखो, डॉक्टर विफल हो गये। क्या तुम मेरा इलाज कर सकते हो?"

दुर्गाचरण एक क्षण के लिए सोचने लगे। फिर रामकृष्णदेव के रोग क अपने शरीर पर लाने के लिए मन ही मन संकल्प किया और बोलेः "जी गुरुदेव ! आपका इलाज मैं जानता हूँ। आपकी कृपा से मैं अभी वह इलाज करता हूँ।"

लेकिन जैसे ही वे परमहंसजी के निकट पहुँचे, रामकृष्ण परमहंस उनक इरादा जान गये। उन्होंने नाग महाशय को हाथ से धक्का देकर दूर कर दिया और कहाः "हाँ, मैं जानता हूँ कि तुममें यह रोग मिटाने की शक्ति है।"

ईश्वर तै गुरु में अधिक, धारै भक्ति सुजान।
बिन गुरुभक्ति प्रवीन हूँ, लहै न आतम ज्ञान।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आरूणी की गुरुसेवा

प्राचीन काल में आयोद धौम्य नाम के एक ऋषि थे। उनके सुरम्य पवित्र आश्रम में बहुत शिष्य रहते थे। उनमें आरूणि नाम का शिष्य बड़ा ही नम्र, सेवाभावी और आज्ञापालक था। एक बार खूब वर्षा हुई। गुरु ने आरूणी को आश्रम के खेतों की देखभाल के लिए भेजा। आरूणी ने खेत जाकर देखा कि खेत का सारा पानी तो सीमा तोड़कर बाहर निकला जा रहा है। थोड़ी देर में तो पानी का वेग सारी पाल तोड़ देगा और मिट्टी बह जायेगी।

आरूणी ने कमर कसी। जहाँ से पानी निकल रहा था वहाँ उसने मिट्टी डालना शुरु किया, परंतु पानी का वेग सब मिट्टी बहा ले जाता। आखिर आरूणी पानी रोकने के लिए स्वयं ही उस टूटी हुई सीमा में लेट गया। उसके शरीर के अवरोध के कारण बहता पानी तो रुक गया, परंतु इस तरह उसे सारी रात ठंडे पानी में लेटे रहना पड़ा। इस प्रकार उसने खेत की रक्षा की।

प्रातःकाल हुआ। आश्रम के सब शिष्य जब गुरुदेव को प्रणाम करने गये तब उनमें आरूणी दिखा नहीं। गुरु शिष्यों को साथ लेकर आरूणी को ढूँढने खेत की ओर गये और आवाज लगायीः

"आरूणी...! आरूणी...!!"

आरूणी ने गुरु की आवाज सुनी। उसका शरीर तो ठंड से ठिठुर गया था, आवाज दब गयी थी, फिर भी वह उठा और गुरुदेव को प्रणाण करके बोलाः "क्या आज्ञा है गुरुदेव?"

गुरु आयोद धौम्य का हृदय भर आया। शिष्य की सेवा देखकर उनका गुरुत्व छलक उठा। आरूणी के अंतर में शास्त्रों का ज्ञान अपने-आप प्रकट होने लगा। गुरु ने उसका नाम उद्दालक रखा। धन्य है गुरुभक्त आरूणी !

तू मुझे उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

उपमन्यु की गुरु भक्ति

आयोद धौम्य का दूसरा एक शिष्य था – उपमन्यु। गुरु ने उसे गायें चराने की सेवा दी। उपमन्यु सारा दिन गायें चराता और शाम को गायों के साथ आश्रम पहुँच जाता। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट देखकर गुरु ने एक दिन पूछाः

"बेटा ! तू रोज क्या खाता है?"

उपमन्युः "गुरुदेव ! भिक्षा में मुझे जो मिलता है वह खाता हूँ।"

गुरुः "यह तो अधर्म है। भिक्षा गुरु को अर्पण किये बिना नहीं खानी चाहिए।"

गुरु से कपट मित्र से चोरी। या होई निर्धन या होई कोढ़ी।।

दूसरे दिन से उपमन्यु गायों को जंगल में छोड़कर, गाँव से भिक्षा माँगकर ले आता और गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर देता। गुरुदेव सारी भिक्षा रख लेते और उसे कुछ नहीं देते। कुछ दिन बाद उपमन्यु को वैसा ही तन्दुरुस्त देखकर गुरु ने पूछा तो उसने बतायाः "गुरुदेव ! एक बार भिक्षा माँगकर आपके चरणों में अर्पित कर देता हूँ, फिर दूसरी बार माँगकर स्वयं खा लेता हूँ।"

गुरुः "तुम ऐसा करके दूसरे भिक्षाजीवी लोगों की जीविका में बाधा डालते हो, अतः लोभी हो। तुम्हें दुबारा भिक्षा नहीं लानी चाहिए।"

गुरुदेव की यह आज्ञा भी उपमन्यु ने आदरपूर्वक स्वीकार की। कुछ दिन बाद फिर उपमन्यु को उसके निर्वाह के बारे में पूछा तो वह बोलाः "प्रभु ! मैं गायों का दूध पीकर निर्वाह कर लेता हूँ।"

गुरुः "यह तो अधर्म है। गुरु की गायों का दूध गुरु की आज्ञा के बिना पी लेना तो चोरी हो गयी। ऐसा मत करो।"

दूध पीना बंद होने के बाद भी उपमन्यु को वैसा ही तन्दुरुस्त देखा तो फिर गुरु ने उसे बुलाया। पूछने पर उपमन्यु बोलाः "गाय का दूध जब बछड़े पीते हैं तब थोड़ा फेन बाहर आता है। मैं उसे ही चाटकर संतोष कर लेता हूँ।"

गुरुः "बेटा ! तुमको ऐसा करते देखकर तो बछड़े ज्यादा फेन बाहर छोड़ते होंगे और स्वयं भूखे रह जाते होंगे। ऐसा करना तुम्हारे लिय योग्य नहीं है।"

अब उपमन्यु के लिए भोजन के सब रास्ते बन्द हो गये। परंतु गुरु के प्रति उसके अहोभाव और श्रद्धा में लेशमात्र भी फर्क नहीं पड़ा। गुरु द्वारा सौंपी गयी सेवा चालू रही। बहुत भूख लगती तो वह कभी किसी वृक्ष या वनस्पति के पत्ते चबा लेता।

एक बार क्षुधापीड़ित उपमन्यु भूल से आक के पत्ते खा गया और अपनी आँखें खो बैठा। रास्ता न दिखने के कारण वह एक कुएँ में गिर पड़ा।

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।

शिष्य के कल्याण के लिए, उसके जीवन को गढ़ने के लिए बाहर से तो वज्र से भी कठोर दिखने वाले परंतु भीतर से फूल से भी कोमल कृपालु गुरुदेव ने जब गायों के पीछे उपमन्यु को लौटता हुआ नहीं देखा तो उसे ढूँढने के लिए स्वयं जंगल की ओर चल पड़े। 'उपमन्यु...! बेटा उपमन्यु..... !' की पुकार जंगल में गूँज उठी।

(हे उपमन्यु ! तू धन्य है ! हजारों भक्त पूजा के समय जिन्हें पुकारते हों वे गुरु तुझे पुकार रहे हैं। धन्य है तेरी सेवा !)

गुरु के मुख द्वारा अपने नाम का उच्चार सुनकर कुएँ में से उपमन्यु ने उत्तर दिया। कुएँ के पास आकर गुरु ने सारी हकीकत जानी और आँखों के उपचार के लिए अभिमन्यु को देवों के वैद्य अश्विनी कुमारों की स्तुति से अश्विनीकुमार वहाँ तुरंत प्रकट हुए और उसे आँखों की दवा के रूप में पूआ खाने को दिया। उपमन्यु बोलाः

"अब मुझसे गुरु की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं खाने जायेगा।"

अश्विनीकुमारः "यह तो दवाई है। इसे लेने में कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारे गुरु की भी ऐसी ही अवस्था हुई थी, तब उन्होंने भी खा लिया था।"

उपमन्यु ने नम्र भाव से कहाः **"मेरे गुरुदेव क्या करते हैं यह मुझे नहीं देखना है। मुझे तो वे जैसा कहते हैं तदनुसार मानना है।"**

अश्विनीकुमार प्रसन्न हुए। उन्होंने उपमन्यु की आँखें ठीक कर दीं। उपमन्यु कुएँ से बाहर आया और सब वृत्तांत कहकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा। गुरुदेव का हृदय भर आया और उनके मुखारविन्द से अमृत-वचनों के रूप में आशीर्वाद निकल पड़ेः "बेटा ! तू वेद-वेदांग का ज्ञाता, धर्मावलंबी और महान पंडित बनेगा।"

हुआ भी ऐसा ही। लाख-लाख वंदन हों, बाहर से कठोर दिखते हुए भी अन्दर से शिष्य का कल्याण करने वाला ब्रह्मवेत्ता सदगुरुओं को ! धन्य है ऐसी कठोर कसौटी में भी अडिग रहकर प्रतिकार न करने वाले एवं गुरु द्वारा मिलने वाले आध्यात्मिक अमृत को पचाकर पार ही जाने वाले उपमन्यु जैसे सतशिष्य !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

गुर्वष्टकम्

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यविरचितम्

शरीरं सुरुपं तथा वा कलत्रं
यशश्चारू चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।1।।

यदि शरीर रुपवान हो, पत्नी भी रूपसी हो और सत्कीर्ति चारों दिशाओं में विस्तरित हो, मेरु पर्वत के तुल्य अपार धन हो, किंतु गुरु के श्रीचरणों में यदि मन आसक्त न हो तो इन सारी उपलब्धियों से क्या लाभ?

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं
गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।2।।

सुन्दरी पत्नी, धन, पुत्र-पौत्र, घर एवं स्वजन आदि प्रारब्ध से सर्व सुलभ हो किंतु गुरु के श्रीचरणों में मन की आसक्ति न हो तो इस प्रारब्ध-सुख से क्या लाभ?

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।3।।

वेद एवं षटवेदांगादि शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हों, जिनमें सुन्दर काव्य-निर्माण की प्रतिभा हो, किंतु उसका मन यदि गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सदगुणों से क्या लाभ?

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे

ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।4।।

जिन्हें विदेशों में समादर मिलता हो, अपने देश में जिनका नित्य जय-जयकार से स्वागत किया जाता हो और जो सदाचार-पालन में भी अनन्य स्थान रखता हो, यदि उसका भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति अनासक्त हो तो इन सदगुणों से क्या लाभ?

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।5।।

जिन महानुभाव के चरणकमल पृथ्वीमण्डल के राजा-महाराजाओं से नित्य पूजित रहा करते हों, किंतु उनका मन यदि गुरु के श्री चरणों में आसक्त न हो तो इसे सदभाग्य से क्या लाभ?

यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापात्
जगद्वस्तु सर्वं करे सत्प्रसादात्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।6।।

दानवृत्ति के प्रताप से जिनकी कीर्ति दिगदिगान्तरों में व्याप्त हो, अति उदार गुरु की सहज कृपादृष्टि से जिन्हें संसार के सारे सुख-ऐश्वर्य हस्तगत हों, किंतु उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों में आसक्तिभाव न रखता हो तो इन सारे ऐश्वर्यों से क्या लाभ?

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ
न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।7।।

जिनका मन भोग, योग, अश्व, राज्य, धनोपभोग और स्त्रीसुख से कभी विचलित न हुआ हो, फिर भी गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न बन पाया हो तो इस मन की अटलता से क्या लाभ?

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये
न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।8।।

जिनका मन वन या अपने विशाल भवन में, अपने कार्य या शरीर में तथा अमूल्य भंडार में आसक्त न हो, पर गुरु के श्रीचरणों में भी यदि वह मन आसक्त न हो पाये तो उसकी सारी अनासक्तियों का क्या लाभ?

अनर्घ्याणि रत्नादि मुक्तानि सम्यक्
समालिंगिता कामिनी यामिनीषु।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।9।।

अमूल्य मणि-मुक्तादि रत्न उपलब्ध हो, रात्रि में समलिंगिता विलासिनी पत्नी भी प्राप्त हो, फिर भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न बन पाये तो इन सारे ऐश्वर्य-भोगादि सुखों से क्या लाभ?

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही
यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेत् वांछितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं
गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम्।।10।।

जो यती, राजा, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ इस गुरु-अष्टक का पठन-पाठन करता है और जिसका मन गुरु के वचन में आसक्त है, वह पुण्यशाली शरीरधारी अपने इच्छितार्थ एवं ब्रह्मपद इन दोनों को सम्प्राप्त कर लेता है यह निश्चित है।

श्री भैरवी देवी भगवान भैरव से कहती हैं-

गुरुभक्त्या य शक्रत्वमभक्त्या शूकरो भवेत्।
गुरुभक्तः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः।।

'जिसके हृदय में गुरुभक्ति है वह इन्द्र-पद को प्राप्त होता है अर्थात् उसके हृदय में देवत्व खिलता है एवं जिसकी गुरुचरणों में भक्ति नहीं है वह शूकर (सूअर) होता है अर्थात् उसमें असुरत्व प्रकट होता है। समस्त भक्तिशास्त्रों में यह कहा गया है कि गुरुभक्ति से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।'

(रूद्रयामलम् – 1.243)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सतशिष्य को सीख

जगत में सर्वाधिक पाप काटने और आध्यात्मिक तौर पर ऊँचा उठानेवाला कोई साधन है तो वह है ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की डाँट, मार व उनके मर्मभेदी शब्द। शिष्यों के विशेष पापों की सफाई के लिए अथवा उन्हें ऊँचा उठाने के लिए सदगुरु द्वारा दी जाने वाली डाँट-मार के पीछे शिष्य की गलती निमित्तमात्र होती है। मूल कारण तो सर्वत्र व्याप्त गुरुतत्त्व द्वारा बनाया गया माहौल होता है।

जब भी किसी ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु द्वारा किसी शिष्य को दी जाने वाली डाँट-मार अथवा मर्मभेदी शब्दों से शिष्य को मृत्युतुल्य कष्ट हो और सदगुरु का सान्निध्य छोड़कर घर भाग जाने के विचार आयें तो उसे भागना नहीं चाहिए, लेकिन समझना चाहिए कि इस मनःसंताप से अपने कई जन्मों के पाप भस्म हो रहे हैं। अनुक्रम

सच्चे सदगुरु तो तुम्हारे स्वरचित सपनों की धज्जियाँ उड़ा देंगे। अपने मर्मभेदी शब्दों से तुम्हारे अंतःकरण को झकझोर देंगे। वज्र की तरह वे गिरेंगे तुम्हारे ऊपर। तुमको नया रूप देना है, नयी मूर्ति बनाना है, नया जन्म देना है न ! वे तरह-तरह की चोट पहुँचायेगे, तुम्हें तरह-तरह से काटेंगे तभी तो तुम पूजनीय मूर्ति बनोगे। अन्यथा तो निरे पत्थर रह जाओगे। तुम पत्थर न रह जाओ इसीलिए तो तुम्हारे अहंकार को तोड़ना है, भ्रांतियों के जाल को काटना है। तुम्हें नये जन्म के लिए नौ माह के गर्भवास और जन्म लेते समय होने वाली पीड़ा तो सहनी पड़ेगी न ! बीज से वृक्ष बनने के लिए बीज के पिछले रूप को तो सड़ना-गलना पड़ेगा न ! शिष्य के लिए सदगुरु की कृपापूर्ण क्रिया एक शल्यक्रिया के समान है। सदगुरु के चरणों में रहना है तो एक बात मत भूलना – चोट लगेगी, छाती फट जायेगी गुरु के शब्द-बाणों से। खून भी बहेगा। घाव भी होंगे। पीड़ा भी होगी। उस पीड़ा से लाखों जन्मों की पीड़ा मिटती है। **पीड़ोद् भवा सिद्धयः।** सिद्धियाँ पीड़ा से प्राप्त होती हैं। जो हमारे आत्मा के आत्मा हैं, जो सब कुछ हैं उन्हीं की प्राप्तिरूप सिद्धि मिलेगी।.... लेकिन भैया ! याद रखना, अपने बिना किसी स्वार्थ के अपनी शल्यक्रिया द्वारा कभी-कभी आते हैं इस धरा पर। उन्हीं के द्वारा लोगों का कल्याण होता है बड़ी भारी संख्या में। कई जन्मों के संचित पुण्यों का उदय होने पर भाग्य से अगर इतने करुणावान महापुरुष मिल जायें तो हे मित्र ! प्राण जायें तो जायें, पर भागना मत।

कबीरजी कहते हैं-

शीश दिए सदगुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।

अतः कायरता मत दिखाना। भागना मत। भगोड़े मत बनना। अन्यथा तो क्या होगा कि पुनः पुनः आना पड़ेगा। पूछोगेः "कहाँ?" ...तो जवाब है, यहीं.... इसी धरा पर घोड़ा, गधा, कुत्ता वृक्षादि बनकर.... पता नहीं क्या-क्या बनकर आना पड़ेगा। अब तुम्हीं निर्णय कर लो।

बहुत-से साधकों को सदगुरु के सान्निध्य में रहना तब तक अच्छा लगता है जब तक वे प्रेम देते हैं। परंतु जब उनके उत्थानार्थ सदगुरु उनका तिरस्कार करते हैं, फटकारते हैं, उनका देहाध्यास तोड़ने के लिए उन्हें विभिन्न कसौटियों में कसते हैं तब साधक कहता है.... "मैं सदगुरु के सान्निध्य में रहना तो चाहता हूँ, पर क्या करूँ? बड़ी परेशानी है। इतना कठोर नियंत्रण !"

भैया ! घबरा मत। एक तेरे लिए सदगुरु अपने नियम नहीं बदलेंगे। उन्हें लाखों का कल्याण करना है। उनकी लड़ाई तेरे से नहीं, तेरी मलिन कल्पनाओं से है। तेरे मन को, तेरे

अहंकार को मिटाना है, तेरे मन के ऊपर गाज गिराना है... तभी तो तू ब्रह्मस्वरूप में जागेगा। तेरे अहं का अस्तित्व मिटेगा तभी तो तेरा कल्याण होगा।

अभी तो मन तुझे दगा दे रहा है। मन के द्वारा माँगी जाने वाली यह स्वतंत्रता वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है अपितु स्वेच्छाचार है। सच्ची स्वतंत्रता तो आत्मज्ञान में है। आत्मज्ञान के रास्ते जल्दी आगे बढ़ाने के लिए ही सदगुरु साधक को कंचन की तरह तपाना शुरु करते हैं। परंतु साधक में यदि विवेक जागृत न हो तो उसका मन उसे ऐसे खड्डे में पटकता है कि जहाँ से उठने में उसे वर्षों नहीं, जन्मों लग जाते हैं। फिर तो वह... **घर का रहा न घाट का, ज्यों धोबी का श्वान।** अनुक्रम

याद रखो, जब भी तुम्हें सदगुरु की गढ़ाई का सामना करना पड़े, अपनी दिनचर्या को झाँक लो, अपनी गलतियों को निहार लो। निश्चित ही तुमसे कोई गलती हुई है, कोई पाप हुआ है आगे-पीछे अथवा कोई पकड़ आ गयी है। तात्कालिक गलती तो निमित्तमात्र है। सदगुरु तो तुम्हारे एक-एक पाप की सफाई करके तुम्हें आगे बढ़ाना चाहते हैं। सबके भाग्य में नहीं होती सदगुरु की गढ़ाई। तुम भाग्यशाली हो कि सदगुरु ने तुम्हें गढ़ने के योग्य समझा है। तुम भाग्यशाली हो कि सदगुरु ने तुम्हें गढ़ने के योग्य समझा है। तुम अपनी सहनशक्ति का परिचय देते हुए उन्हें सहयोग दो और जरा सोचो कि 'तुमसे उन्हें कुछ पाना नहीं है, उनका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है। केवल एवं केवल तुम्हारे कल्याण के लिए ही वे अपना ब्रह्मभाव छोड़कर ऐसा क्रोधपूर्ण बीभत्स रूप धारण करते हैं।' अरे, रो ले एकान्त में बैठकर... रो ले भैया ! इतना जानकर भी सदगुरु के प्रति तुम्हारे अंतःकरण में द्वेष उत्पन्न हो रहा है तो फट नहीं जाती छाती तेरी?

वैसे ऑपरेशन के समय सदगुरु इतनी माया फैलाकर रखते हैं कि गढ़ाई से उत्पन्न विचारों का पोषण करने की शिष्य की औकात नहीं क्योंकि.... **अंतर हाथ सहारि दे, बाहर मारे चोट।**

फिर भी चित्त सदगुरु का अपमान करता है, अहंकारवश ज्यादा हठ करता है तो सदगुरु स दूर हो सकता है। अतः हे साधक ! सावधान ! अनुक्रम

दुर्जन की करूणा बुरी, भलो साँई का त्रास।
सूरज जब गर्मी करे, तब बरसन की आस।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भागवत में गुरु-महिमा

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्।।

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसा कायाद्यनीहया।।
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया।।
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्।।
यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्।।
एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम्।।

देवर्षि नारदजी धर्मराज युधिष्ठिर से कहते हैं- "धर्मराज ! संकल्पों के परित्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभ को और तत्त्व के विचार से भय को जीत लेना चाहिए।

अध्यात्म-विद्या से शोक और मोह पर, संतों की उपासना से दम्भ पर, मौन के द्वारा योग के विघ्नों पर और शरीर-प्राण आदि को निश्चेष्ट करके हिंसा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

आधिभौतिक दुःख को दया के द्वारा, आधिदैविक वेदना को समाधि के द्वारा और आध्यात्मिक दुःख को योगबल से एवं निद्रा को सात्त्विक भोजन, संग आदि के सेवन से जीत लेना चाहिए।

सत्त्वगुण के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर और उपरति के द्वारा सत्त्वगुण पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। श्रीगुरुदेव की भक्ति के द्वारा साधक इन सभी दोषों पर सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है।

हृदयों में ज्ञान का दीपक जलानेवाले गुरुदेव साक्षात् भगवान ही हैं। जो दुर्बुद्धि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र-श्रवण हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है।

बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरणकमलों का अनुसंधान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुष के अधीश्वर वे स्वयं भगवान ही गुरुदेव के रूप में प्रकट हैं। इन्हें लोग भ्रम से मनुष्य मानते हैं। अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 7.15.22-27)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ